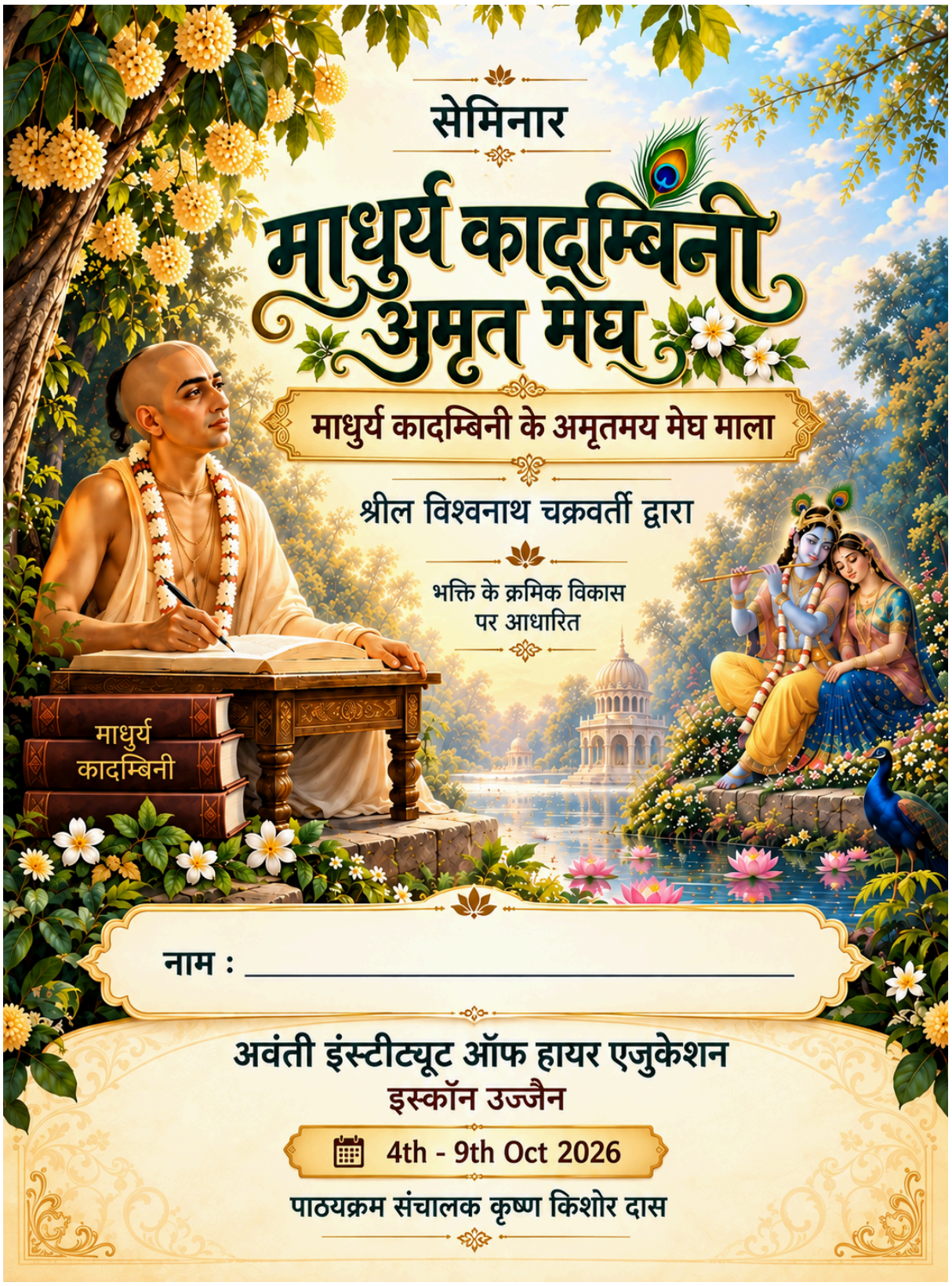

सेमिनार
माधुर्य कादम्बिनी अमृत मेघ
माधुर्य कादम्बिनी के अमृतमय मेघ माला
श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा
भक्ति के क्रमिक विकास
पर आधारित
माधुर्य
कादम्बिनी
नाम : _____
अवंती इंस्टीट्यूट ऑफ हायर एजुकेशन
इस्कॉन उज्जैन
4th - 9th Oct 2026
पाठयक्रम संचालक कृष्ण किशोर दास

भूमिका

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव
गुरु-कृष्ण-प्रसाद पाय भक्ति-लता-बीज
[सीसी. मध्य 19.151]
"अपने कर्मों के अनुसार, सभी जीव पूरे ब्रह्मांड में घूम रहे हैं। लाखों भटकते जीवों में से, एक जो बहुत भाग्यशाली व्यक्ति को कृष्ण की कृपा से एक प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु के साथ जुड़ने का अवसर मिलता है, कृष्ण और आध्यात्मिक गुरु दोनों की दया से, ऐसे व्यक्ति को भक्ति सेवा की लता का बीज प्राप्त होता है।"

सबसे बड़ा दुर्भाग्य है अपने भाग्य का एहसास न होना।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वत: ॥ (भ.गी. 7.3)
सहस्रों मनुष्यों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है, और जिन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली है, उनमें से कदाचित् ही कोई मुझे यथार्थ रूप में जानता है।

“जीवन में अनेक लोग इसलिए असफल रह जाते हैं, क्योंकि वे उस समय प्रयास छोड़ देते हैं जब वे सफलता के बहुत निकट होते हैं। अतः साधक को धैर्य, श्रद्धा और भगवान पर विश्वास रखते हुए निरंतर प्रयास करते रहना चाहिए।”

— थॉमस ए. एडिसन

“हम सभी अत्यंत भाग्यशाली हैं कि हमें कृष्णभावनामृत प्राप्त हुआ है, लेकिन बाद में अपनी असावधानी, अनर्थों और गलत चुनावों के कारण हम स्वयं ही इस अमूल्य अवसर को बिगाड़ देते हैं।”

हमें कृष्ण चेतना प्राप्त हुई, लेकिन हमें इसे संजोकर रखने और धीरे-धीरे जीवन के अंतिम लक्ष्य - कृष्ण प्रेम की ओर बढ़ने की भी आवश्यकता है

“गौड़ीय साहित्य हमें चरण-दर-चरण मार्गदर्शन देता है।”

1. भक्ति की स्थापना - भगवत गीता
2. भक्ति का उदाहरण - श्रीमद्भागवतम्
3. भक्ति की शिक्षा - भक्तिरसामृतसिन्धु (भाग 1)
4. भक्ति में प्रवेश - माधुर्य कादम्बिनी (मानचित्र की तरह - आप कहाँ हैं और आपको कहाँ जाना है)

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर

गौड़ीय वैष्णव परम्परा के एक उज्ज्वल रत्न

- 17वीं-18वीं शताब्दी के गौरवशाली गौड़ीय वैष्णव आचार्य।
- श्रीमद्भागवत तथा अन्य वैष्णव ग्रंथों के विख्यात भाष्यकार।
- रागानुगा-भक्ति के प्रखर प्रवक्ता, जिन्होंने श्रीकृष्ण की मधुरतम लीलाओं और उनकी अंतरंग करुणा का सजीव प्रकाश किया।
- अनेक दिव्य ग्रंथों के रचयिता, जिनमें माधुर्य कादम्बिनी विशेष रूप से प्रसिद्ध है।
- भक्ति की आंतरिक अवस्थाओं और साधक की आध्यात्मिक प्रगति को अत्यंत सूक्ष्मता, स्पष्टता और करुणा के साथ प्रस्तुत किया।

"उन्होंने भक्ति के मेघों में छिपे दिव्य प्रेमामृत को संसार के समक्ष प्रकट किया।"

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने कहा:

"गौड़ीय वैष्णव धर्म के ऐतिहासिक विकास के मध्यकाल में (1600-1700), विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर उसके संरक्षक, अभिभावक और आचार्य हैं।"

उनकी सेवा के तीन दिव्य आयाम

1. रक्षक **-** बाहर से **:** उन्होंने बाहरी चुनौतियों और गलत व्याख्याओं से गौड़ीय वैष्णव परंपरा की रक्षा की।

2. संरक्षक **-** भक्तों के लिए **:** उन्होंने भक्तों का पोषण किया, उनका मार्गदर्शन किया और उनकी देखभाल की, तथा सदैव शुद्ध भक्तों की सभा (भक्त-चक्र) में स्थित रहे।

3. आचार्य **-** उन्होंने एक शुद्ध भक्त के जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया और अपने लेखन तथा व्यक्तिगत आचरण के माध्यम से सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्य की शिक्षा दी।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की महिमा का वर्णन करते हुए यह दिव्य श्लोक कहा:

विश्वस्यनाथरूपोऽसौ भक्ति-वर्त्म-प्रदर्शनात्।
भक्त-चक्रे वर्तितत्वात् चक्रवर्त्याख्ययो भवत्॥

“श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर समस्त विश्व के नाथ के स्वरूप हैं, क्योंकि उन्होंने भक्ति के मार्ग को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया। और वे सदैव शुद्ध भक्तों के चक्र अर्थात् भक्त-समुदाय में स्थित रहते थे, इसलिए वे ‘चक्रवर्ती’ नाम से प्रसिद्ध हुए।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर लिखते हैं:

चैतन्य-रूपोदित-रीतिमेकाम्
एकान्तमभ्यस्तुमहंसमीहे।
तत्तत्-तदीयानुगतोक्त-भावो
भावोचितो ध्येयो इतो न काव्यम्॥

“मैं श्री चैतन्य महाप्रभु और श्रील रूप गोस्वामी द्वारा प्रदर्शित उस एकमात्र भक्ति-पद्धति का एकनिष्ठ होकर अभ्यास करना चाहता हूँ। उनके अनुगामी भक्तों द्वारा प्रकट किए गए भावों का अनुसरण करते हुए इन विषयों का उसी भक्तिमय भाव से चिंतन करना चाहिए, न कि इन्हें केवल साहित्य या काव्य समझना चाहिए।”

वैष्णव कवि कृष्णदास द्वारा

श्रील चक्रवर्ती ठाकुर की 'माधुर्य-कादम्बिनी' के अनुवाद के उपसंहार से

माधुर्य-कादम्बिनी-ग्रन्थ जगत कैलो धन्य
चक्रवर्ती मुखे वक्ता आपनि श्री-कृष्ण-चैतन्य

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने माधुर्य-कादम्बिनी की रचना करके सम्पूर्ण जगत को धन्य बना दिया है। वास्तव में, इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने श्रील चक्रवर्ती ठाकुर के मुखारविन्द के माध्यम से ही उपदेश प्रदान किया है।

केहो कहेन-चक्रवर्ती श्री-रूपेर अवतार
कठिन जे तत्त्व सरल करिते प्रचार

कुछ लोग कहते हैं कि श्रील चक्रवर्ती ठाकुर, श्रील रूप गोस्वामी के अवतार हैं। वे अत्यन्त जटिल और गूढ़ तत्त्वों को सरल एवं सुबोध रूप में प्रस्तुत करने की अद्भुत कला में निपुण थे।

ओहे गुण-निधि श्री-विश्वनाथ चक्रवर्ती
कि जानिबो तोमार गुण मुई मूढ़-मति

हे गुणों के अथाह भण्डार, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर! मैं तो अल्पबुद्धि और मूढ़ व्यक्ति हूँ, आपके दिव्य गुणों का यथार्थ वर्णन कैसे कर सकता हूँ?

(अतः कृपया अपने दिव्य गुणों को मेरे हृदय में प्रकट करें। यही आपके श्रीचरणों में मेरी विनम्र प्रार्थना है।)

अमृत-वर्षाएँ (The Showers of Nectar)

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर माधुर्य-कादम्बिनी के अध्यायों को "अमृत-वर्षा" कहते हैं तथा उन्हें क्रमवार संख्या के अनुसार वर्णित करते हैं, जैसे कि प्रथम अमृत-वर्षा।

माधुर्य-कादम्बिनी की आठ अमृत-वर्षाएँ

क्रमांक	अमृत-वर्षा	विषय
1	प्रथम अमृत-वर्षा	भक्ति की सर्वोच्च महिमा
2	द्वितीय अमृत-वर्षा	भक्ति की प्रथम तीन अवस्थाओं का वर्णन *(श्रद्धा, साधु-संग एवं भजन-क्रिया)*
3	तृतीय अमृत-वर्षा	भक्ति के सभी अवरोधों का निवारण *(अनर्थ-निवृत्ति)*
4	चतुर्थ अमृत-वर्षा	अमृत-धारा का प्रवाह *(निष्ठा)*

5	पंचम अमृत-वर्षा	दिव्य रस के स्वाद की अनुभूति *(रुचि)*
6	षष्ठ अमृत-वर्षा	हृदय का दिव्य आकर्षण *(आसक्ति)*
7	सप्तम अमृत-वर्षा	दिव्य भाव-रस का प्रवाह *(भाव-भक्ति)*
8	अष्टम अमृत-वर्षा	आत्मा की परम अभिलाषा की पूर्ण सिद्धि *(प्रेम-भक्ति)*

प्रथम अमृत-वर्षा

➡ भक्तेः सर्वोत्कर्षः
भक्ति की सर्वोच्च महिमा

मंगलाचरण

श्लोक **1**
हृद्-वाप्रे नव-भक्ति-शस्य-वितेः संजीवनी स्वगमा
रम्भे काम-तपर्तु-दहा-दमनि विश्वपगोल्लासिनि
दूरं मे मरु-शखिनो 'पि सरसि-भावया भूयात् प्रभु
श्री-चैतन्य-कृपा-निरंकुश-महा-माधुर्य-कादम्बिनी

श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु की कृपा (प्रभु-श्री-चैतन्य-कृपा) अत्यन्त मधुर अमृत से परिपूर्ण एक ऐसी अनियंत्रित मेघमाला है (निरंकुश-महा-माधुर्य-कादम्बिनी), जिसके सहसा प्रकट होते ही (वगाम-रम्भे) हृदय रूपी खेत (हृद्-वप्रे) में नवधा-भक्ति रूपी धान्य की फसल (नव-भक्ति-शस्य-वितनः) पूर्णतः पुनर्जीवित हो उठती है (सञ्जीवनी)। यह कृपा कामना रूपी प्रचण्ड ग्रीष्म-ताप की जलन को शांत कर देती है (काम-तापर्तु-दह-दमनी) और समस्त जीवों की विश्वरूपी नदी को दिव्य उल्लास से भर देती है (विश्वापगोल्लासिनी)। दूर से ही (दूरान्), भगवान् की कृपा रूपी वे मेघ इस अयोग्य जीव को भी—जो मरुभूमि में खड़े एक सूखे वृक्ष के समान है (मे मरु-शाखिनोऽपि)—सरसता, तृप्ति और आनन्द प्रदान करें (सरसि-भावाय भूयात्)।

I – मंगलाचरण

श्लोक **– 2**

भक्तिं पूर्वैः श्रितां तां तु
रसं पश्येद् यदन्तधीः।
तं नौमि सततं रूप-
नाम-प्रिय-जनं हरेः॥

यद्यपि पूर्वकाल में अन्य महापुरुषों ने भी भगवान् की भक्ति के मार्ग को स्वीकार किया था (पूर्वैः तां भक्तिः श्रिता तु), तथापि मैं निरन्तर श्रील रूप गोस्वामी को प्रणाम करता हूँ (तां सततं नौमि), जो भगवान् के अत्यन्त प्रिय जन हैं (रूप-नाम हरेः प्रिय-जनम्)।

उनकी कृपा से मानव समाज को वह दिव्य बुद्धि प्राप्त हुई (यद्-अत्त-धीः), जिसके द्वारा भक्ति से प्रकट होने वाले समस्त रसों—अर्थात् भगवान् के साथ विभिन्न दिव्य संबंधों—का दर्शन किया जा सकता है (रसम् पश्येत्)।

श्री चैतन्य-चन्द्रामृत (६)

ना योगो ना ध्यानं न च जप-तपस्-त्याग-नियमो
न वेदा नाचारः क्व नु बत निषिद्धाध्युपरतिः।
अकस्माच्चैतन्येऽवतारति दया-सार-हृदये
पुमार्थानां मौलिं परम इह मुदां लुण्ठति जनः॥

जिन लोगों का योग, ध्यान, जप, तप, त्याग, नियम, वेदाध्ययन तथा सदाचार से तनिक भी संबंध नहीं है, और जो निषिद्ध कर्मों का त्याग भी नहीं करते, वे भी आज श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतरण के कारण, जिनका हृदय करुणा के सार से परिपूर्ण है, जीवन के परम पुरुषार्थ अर्थात् महाप्रेम-रूपी मुकुटमणि को प्राप्त कर रहे हैं। उस महाप्रेम की प्राप्ति की कामना स्वयं ब्रह्मा, शिव और नारद जैसे महान भक्त भी करते हैं।

रूप-रघुनाथ-पदे ह-इबे आकुति
कबे हाम बुझब से युगल-पीरिति

"जब मेरे हृदय में श्रील रूप गोस्वामी और श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के चरणों की सेवा की उत्कट लालसा जागृत होगी, तभी मैं श्री श्री राधा-कृष्ण के दिव्य प्रेम-सम्बन्ध को वास्तव में समझ सकूँगा।"

"कृष्णभावनामृत आन्दोलन श्रील रूप गोस्वामी के मार्गदर्शन और संरक्षण में संचालित होता है।"
(श्रील प्रभुपाद, उपदेशामृत की प्रस्तावना)

ādhurya = माधुर्य**,** दिव्य मधुरता

Kādambinī = मेघमाला**,** अमृत-वर्षा करने वाले मेघों का समूह

आध्यात्मिक प्रगति को कैसे मापें**?**

आध्यात्मिक विकास का अर्थ है वास्तविक अहं की क्रमिक वृद्धि तथा उसके साथ-साथ मिथ्या अहं का क्रमिक क्षय — अर्थात् अहंता और ममता का कम होना।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज को चार प्रकार के प्रलय के विषय में बताया है

1. नित्य प्रलय — नित्य प्रलय
   अर्थात् निरंतर होने वाला विनाश।
2. नैमित्तिक प्रलय — नैमित्तिक प्रलय
   अर्थात् समय-समय पर होने वाला प्रलय।

3. प्राकृतिक प्रलय — प्राकृतिक प्रलय
   ब्रह्माजी के जीवनकाल की समाप्ति के पश्चात होने वाला सम्पूर्ण भौतिक विनाश।
4. आत्यन्तिक प्रलय — आत्यन्तिक प्रलय
   तभी वह भगवद्धाम वापस जाने के योग्य बनता है। इसे अंतिम प्रलय अथवा मुक्ति कहा गया है।

श्रील रूप गोस्वामी साधक की क्रमिक आध्यात्मिक उन्नति का वर्णन करते हैं

अदौ श्रद्धा तथा साधु- संगो-'था भजन-क्रिया
ततोऽनार्थ निवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचि ततः
अथसक्तिस ततो भावस ततः प्रेमभ्युदंचति
साधकानं अयं प्रेमः प्रादुर्भवे भवेत् क्रमः

ये 9 चरण हैं:
1. श्रद्धा - विश्वास
2. साधु-संग - भक्तों के साथ संगति
3. भजन-क्रिया - भक्ति सेवा की प्रक्रिया को गंभीरता से लेने का प्रयास करना
4. अनर्थ-निवृत्ति - सभी अवांछित चीजों से मुक्त होना (शुद्धि)
5. निष्ठा - कृष्ण चेतना में स्थिरता (दृढ़ विश्वास)
6. रुचि - कृष्ण चेतना का गहरा स्वाद (आकर्षण)
7. असक्ति - कृष्ण के प्रति लगाव (संबंध)
8. भाव - परमानंद, कृष्ण के लिए प्रेम के सूर्य की पहली किरणें (भावना)
9. प्रेम - कृष्ण के प्रति शुद्ध प्रेम

परम सत्य की सर्वोच्च अनुभूति: अखिल-रसामृत-मूर्ति

श्रुति (तैत्तिरीय उपनिषद्) चेतना के विभिन्न आवरणों (अन्नमय आदि) का वर्णन करने के पश्चात् निष्कर्ष रूप में कहती है:ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा

"ब्रह्म समस्त वस्तुओं का आश्रय और आधार है; वही सर्वोच्च है।"

इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि सबका आधार होने के कारण ब्रह्म, आनन्दमय पुरुष से भी श्रेष्ठ है।

किन्तु उसी उपनिषद् में आगे कहा गया है:

रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति

"भगवान स्वयं रसस्वरूप हैं। उस रस की प्राप्ति करके जीव वास्तविक आनन्द को प्राप्त करता है।"

यह वचन दर्शाता है कि रसस्वरूप भगवान ही सर्वोच्च सत्य हैं।

श्लोक ३

यह कथन यह दर्शाता है कि रस के साक्षात् अवतार-स्वरूप भगवान् ही परम हैं। इसी भाव में, वेदान्त के सार तथा समस्त प्रमाणो के सम्राट श्रीमद्भागवतम् भी भगवान् को रस अथवा परम आनन्द के साक्षात् स्वरूप के रूप में वर्णित करता है:

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥

Krsna – Akhila Rasamrta Murtih

1. mallānām aśanir -------> Wrestlers as thunderbolt – **Virya rasa**
2. nṛṇāṁ nara-varaḥ -------> Men of Mathura as best of males – **Vismaya rasa**
3. strīṇāṁ smaro mūrtimān ---> Women as cupid – **Madhurya rasa**
4. gopānāṁ sva-jano -------> Cowherd boys as their relative – **Sakhya and Hasya rasa**
5. asatāṁ kṣiti-bhujāṁ śāstā ---> Impious rulers as a chastiser – **Raudra rasa**
6. sva-pitroḥ śiśuḥ -------> His parents as their child – **Vatsalya and Karuna rasa**
7. mṛtyur bhoja-pateḥ -------> Death for kamsa – **Bhayanaka rasa**
8. virāḍ aviduṣāṁ -------> Unintelligent as virata rupa – **Bibhatsa rasa**
9. tattvaṁ paraṁ yogināṁ -----> Yogis as absolute truth – **Shanta rasa**
10. vṛṣṇīnāṁ para-devata -------> Vrsnis as Supreme worshippable deity – **Dasya rasa**

श्लोक ४

जिस प्रकार भगवान के अवतरण का कोई भौतिक कारण नहीं होता, उसी प्रकार उनकी अभिन्न शक्ति स्वरूप भक्ति भी किसी भौतिक कारण पर निर्भर नहीं होती। अपने स्वभाव से ही भक्ति स्वयं प्रकट होने वाली है।

इसीलिए श्रीमद्भागवतम् **(1.2.6)** में कहा गया है:

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे
अहैतुकी अप्रतिहता ययाऽत्मा सुप्रसीदति॥

"समस्त मानवता का परम धर्म वही है, जिसके द्वारा भगवान अधोक्षज के प्रति प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो। ऐसी भक्ति अहैतुकी (निस्वार्थ) और अप्रतिहत (अविच्छिन्न) होनी चाहिए, तभी आत्मा पूर्णतः संतुष्ट होती है।" इस श्लोक में प्रयुक्त **"अहैतुकी"** शब्द यह दर्शाता है कि भक्ति का प्राकट्य किसी भौतिक कारण (हेतु) से नहीं होता।

भक्ति कैसे प्राप्त होती है?

1. क्या केवल भाग्य या संयोग से**?**
   क्या भक्ति मात्र अच्छे भाग्य का परिणाम है?

2. क्या शुभ कर्मों से**?**
   क्या पुण्य और सद्कर्मों से भक्ति प्राप्त हो सकती है?

3. क्या भगवान की कृपा से**?**
   क्या भक्ति भगवान की दया से प्राप्त होती है?

4. या कोई अन्य कारण है**?**
   क्या भक्ति प्राप्त होने में कोई और तत्व भी कार्य करता है?

साधु-संग की शक्ति भक्ति का मूल और प्रेम का जीवन-आधार है

कृपा अकारण है - कोई अन्य कारण नहीं
शुद्ध भक्त की अकारण कृपा, कृष्ण की भी नहीं

कृष्ण भक्ति नहीं दे सकते क्योंकि
- भक्ति से कृष्ण स्वयं भक्त के वश में हो जाते हैं
- कृष्ण पर पक्षपात करने का दोष लगेगा

भक्ति का कारण भक्ति है | जिसके पास भक्ति है वही भक्ति दे सकता है

चैतन्य चरितामृत (मध्य 22.83)
कृष्ण-भक्ति-जन्म-मूल हय 'साधु-संग'
कृष्ण-प्रेम जन्मे, तेन्हो पुन: मुख्य अंग
"भगवान कृष्ण की भक्ति का मूल कारण उन्नत भक्तों की संगति है। यहां तक कि जब कृष्ण के प्रति किसी का सुप्त प्रेम जागृत हो जाता है, तब भी भक्तों का साथ सबसे आवश्यक है।

श्रीमद्भागवत (2.4.18)
किरात-हूणांध्र-पुलिंद-पुलकशा
आभीर-शुम्भ यवानाः खशादयः
ये 'न्ये च पापा यद-अपाश्रय:'
शुध्यन्ति तस्मै प्रभाविष्णवे नमः

"किरात, हूण, आंध्र, पुलिंद, पुलकश, आभीर, शुंभ, यवन, खास जाति के सदस्य और यहां तक कि पाप कर्मों के आदी अन्य लोगों को भी भगवान के भक्तों की शरण लेने से शुद्ध किया जा सकता है, क्योंकि उनकी सर्वोच्च शक्ति है। मैं उन्हें सादर प्रणाम करता हूं।"

गतिविधि

कल्पना कीजिए कि आप आज कृष्ण से मिलें। आपको देखकर कृष्ण अत्यंत प्रसन्न होते हैं। वह आपसे पूछते है, आप उनके पास वापस कैसे पहुंचे? किस-किस ने आपकी मदद की? आप जिनके प्रति कृतज्ञ हैं, उन सबको स्मरण करके श्रीगोवर्धन के प्रति व्यक्त करें।

वैधी-साधना-भक्ति ग्रहण करने की योग्यता

श्लोक – **7**

यः केनाप्यतिभाग्येन जातश्रद्धोऽस्य सेवने ।
नातिसक्तो न वैराग्यभागस्यामधिकार्यसौ ॥॥

वह व्यक्ति, जिसके हृदय में पूर्व में प्राप्त भक्तों के संग के संस्कारों से परम सौभाग्यवश भगवान की सेवा के प्रति श्रद्धा जागृत हो गई है, जो न तो भौतिक विषयों में अत्यधिक आसक्त है और न ही उनसे अत्यधिक विरक्त है, वह वैधी-भक्ति ग्रहण करने का अधिकारी है।

भक्ति किसी अन्य साधन से उत्पन्न नहीं होती

श्लोक – **8**

यं न योगेन साङ्ख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः ।
व्याख्यास्वाध्यायसन्न्यासैः प्राप्नुयाद् यत्नवानपि ॥ ९ ॥

यदि कोई व्यक्ति अत्यन्त प्रयासपूर्वक योग-साधना, दार्शनिक चिन्तन, दान, व्रत, तपस्या, शास्त्रों की व्याख्या एवं अध्ययन तथा संन्यास आदि साधनों का अभ्यास भी करे, तब भी केवल इन साधनों के द्वारा वह भगवान को प्राप्त नहीं कर सकता। (श्रीमद्भागवतम् 11.12.9)

श्लोक – **8**

दानव्रततपोहोम जपस्वाध्यायसंयमैः ।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥

दान, व्रत, तपस्या, होम, जप, शास्त्र-अध्ययन, इन्द्रिय-संयम तथा अन्य विविध पुण्यमय साधनों के द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति का साधन किया जाता है। (श्रीमद्भागवतम् 10.47.24)

अपितु भक्ति ही अन्य साधनों को सहारा प्रदान करती है

श्लोक – **9**

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥ १७ ॥

यदि कोई व्यक्ति वर्णाश्रम-धर्म के अपने कर्तव्यों को त्यागकर भगवान के श्रीचरणकमलों का भजन आरम्भ करता है और अपरिपक्व अवस्था में किसी कारणवश अपने भजन-पथ से विचलित हो जाता है अथवा पूर्ण सिद्धि तक नहीं पहुँच पाता, तो भी उसका किसी प्रकार का अमंगल नहीं होता।

किन्तु जो व्यक्ति वर्णाश्रम के अपने समस्त कर्तव्यों का विधिपूर्वक पालन तो करता है, परन्तु भगवान का भजन नहीं करता, उसे वास्तव में क्या लाभ प्राप्त होता है?

(श्रीमद्भागवतम् 1.5.17)

भक्ति के बिना अन्य उपलब्धियाँ अपूर्ण हैं

श्लोक

भगवद्-भक्ति-हीनस्य
जातिः शास्त्रं जपस्तपः।
अप्राणस्यैव देहस्य
मण्डनं लोक-रञ्जनम्॥

भगवान की भक्ति से रहित व्यक्ति का उत्तम कुल में जन्म, शास्त्रों का ज्ञान, जप और तपस्या आदि उसी प्रकार हैं, जैसे किसी प्राणहीन शरीर को सजाकर लोगों को प्रसन्न करने का प्रयास करना।

(हरि-भक्ति-सुधोदय 3.12)

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा श्रील सनातन गोस्वामी को उपदेश

बुद्धिमान्-अर्थे — यदि 'विचार-ज्ञ' हय
निज-काम लागि'ह तबे कृष्णेरे भजय॥

'उदार-धी' शब्द का अर्थ है — बुद्धिमान अथवा विचारशील व्यक्ति। ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति यदि अपनी किसी व्यक्तिगत इच्छा की पूर्ति भी चाहता है, तो उसके लिए भी वह भगवान श्रीकृष्ण का ही भजन करता है।

भक्ति विनु कोन साधन दिते नारे फल।
सब फल देय भक्ति स्वतंत्र प्रबल॥

भक्ति के बिना अन्य कोई भी साधन अपना फल प्रदान करने में समर्थ नहीं है। किन्तु भक्ति इतनी प्रबल और स्वतन्त्र है कि वह स्वयं सभी वांछित फलों को प्रदान करने में समर्थ है।

प्रबल भक्ति द्वारा इन्द्रियों पर विजय
बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रिय: ।
प्राय: प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥

यदि मेरा भक्त अभी अपनी इन्द्रियों को पूर्ण रूप से वश में नहीं कर पाया है और भौतिक विषय-वासनाएँ उसे कभी-कभी विचलित भी करती हैं, तब भी अपनी प्रबल भक्ति के प्रभाव से वह इन्द्रिय-तृप्ति के द्वारा पराजित नहीं होता। (श्रीमद्भागवतम् 11.14.18)

भगवान नारायण के शुद्ध भक्त की महिमा

muktim dadāti karhicit sma na bhakti-yogam

भगवान सरलता से मुक्ति प्रदान कर देते हैं, किन्तु वे भक्ति को इतनी सरलता से प्रदान नहीं करते।

(श्रीमद्भागवतम् 5.6.18)

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायण: ।
सुदुर्लभ: प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥ ५ ॥

हे महामुनि! जीवन्मुक्त तथा मुक्ति प्राप्त सिद्ध पुरुषों में भी भगवान नारायण के प्रति पूर्णतः समर्पित भक्त अत्यन्त दुर्लभ होता है। ऐसा शान्तचित्त भक्त, जो शान्त अथवा अन्य दिव्य रसों में स्थित है, करोड़ों व्यक्तियों में भी अत्यन्त दुर्लभ है।

(श्रीमद्भागवतम् 6.14.5)

भक्ति कभी-कभी ज्ञान को सहारा देने के लिए उसकी सहायिका की भूमिका स्वीकार करती है

श्लोक – **13**

1. यदि कभी ज्ञान भक्ति से श्रेष्ठ स्थिति में दिखाई देता है, तो इसका कारण केवल इतना है कि भक्ति कृपापूर्वक ज्ञान की सहायिका की भूमिका स्वीकार कर उसे सहारा प्रदान कर रही होती है।

2. स्वयं परम पुरुषोत्तम भगवान उपेन्द्र ने इन्द्र को सहारा प्रदान करने के लिए उनके अधीनस्थ की भूमिका स्वीकार की।

3. महान अनुभवी महात्माओं ने इस बात की पुष्टि की है कि इससे भगवान की कोई निम्न स्थिति प्रकट नहीं होती; अपितु इससे उनकी अनुपम कृपा ही प्रकट होती है।

4. इसी प्रकार भक्ति दिव्य एवं परम स्वतन्त्र होते हुए भी अत्यन्त कृपामयी है। इसलिए वह सत्वगुण के स्वरूप को स्वीकार करके सात्विकी-भक्ति के रूप में केवल ज्ञान को सहारा देने के लिए ज्ञान के एक अंग की भूमिका स्वीकार करती है।

अतः केवल विवेकहीन व्यक्ति ही भक्ति को अस्वीकार करेगा

श्लोक – **14**

1. Bhaktyā sañjātayā bhaktyā
(श्रीमद्भागवतम् 11.3.31) साधना-भक्ति का फल प्रेम-भक्ति है और यही प्रेम-भक्ति मानव-जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि अर्थात् पुरुषार्थ-शिरोमणि है।

2. इस प्रकार स्वयं भगवान से प्रकट होने वाली उनकी परम शक्ति भक्ति-देवी के सर्वव्यापक, सभी को वश में करने वाले, जीवन प्रदान करने वाले, सर्वोत्कृष्ट, परम स्वतन्त्र तथा स्वयं प्रकाशित होने वाले स्वरूप का यहाँ संक्षेप में वर्णन किया गया है।

सर्वव्यापकत्वम्, सर्ववशीकारत्वम्, सर्वसञ्जीवकत्वम्, सर्वोत्कर्ष, परम-स्वतन्त्रता एवं स्व-प्रकाशत्वम्।

3. यदि इन सबके पश्चात भी कोई व्यक्ति भक्ति के स्थान पर किसी अन्य साधन को अधिक महत्त्व देता है, तो ऐसे व्यक्ति को उचित विवेक से रहित समझना चाहिए।

बीज से भक्ति-लता तक

- हमें श्रीगुरु और श्रीकृष्ण की कृपा से भक्ति का बीज प्राप्त होता है।
- किन्तु हमारे हृदय की भूमि उपजाऊ होनी चाहिए; अन्यथा भक्ति का यह बीज विकसित नहीं हो पाएगा।
- चार प्रकार के पापकर्म हृदय को कठोर बना देते हैं।

1. उपजाऊ भूमि — चार प्रकार के पापकर्मों को त्यागना।
(हृदय-रूपी भूमि को तैयार करना सबसे कठिन कार्य है।)

2. इसके पश्चात सिंचन — श्रवण और कीर्तन के द्वारा भक्ति-लता को सींचना।

3. दो पत्तियों का प्रकट होना — क्लेशघ्नी और शुभदा।

4. निरन्तर खरपतवार हटाते रहना आवश्यक है।

द्वितीय अमृत-वृष्टि

श्रद्धा — प्रारम्भिक विश्वास

"श्रद्धा भक्ति का बीज है। श्रीकृष्ण और भक्तों की कृपा से यह बीज जागृत होता है और शुद्ध प्रेम की यात्रा आरम्भ होती है।"

श्लोक – 2

आदौ श्रद्धा ततः साधु-सङ्गो
ऽथ भजन-क्रिया।
ततोऽनर्थ-निवृत्तिः स्यात्
ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्
ततः प्रेमाभ्युदञ्चति॥ **(चैतन्य-चरितामृत, मध्य 23.14)**

भक्ति की नौ अवस्थाएँ

1. श्रद्धा
2. साधु-संग
3. भजन-क्रिया
4. अनर्थ-निवृत्ति
5. निष्ठा
6. रुचि
7. आसक्ति
8. भाव
9. प्रेम

भक्ति के दो प्रकार — राग और वैधी

श्लोक – 2

1. कर्म और ज्ञान के मिश्रण से रहित शुद्ध-भक्ति, इन्द्रियों के क्षेत्र में प्रकट होने वाली कल्पलता के समान है।

समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली लता **—** शुद्ध-भक्ति।

2. यह भक्ति उन भक्तों का आश्रय है, जो दृढ़ व्रत लेकर भक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य फल की कामना नहीं करते। वे उन मधुमक्खियों के समान हैं, जो केवल मधुर अमृत का आस्वादन करने के लिए ही लालायित रहती हैं।

जिस प्रकार मधुमक्खी केवल मधुर अमृत की अभिलाषा करती है, उसी प्रकार शुद्ध भक्त केवल भक्ति की ही अभिलाषा करता है।

3. भगवान की प्रसन्नता के लिए अनुकूल भाव से उनकी सेवा करने की वृत्ति ही इस भक्ति-लता का जीवन है।

सेवामय जीवन ही वास्तविक पूर्णता प्रदान करता है।

"श्रद्धा के एक छोटे से बीज से शुद्ध-भक्ति की लता विकसित होती है, जो आत्मा की अभिलाषाओं को पूर्ण करती है।"

1. जिस प्रकार पारस-मणि के स्पर्श से लोहा स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है, उसी प्रकार भक्ति की उपस्थिति से हृदय और इन्द्रियाँ धीरे-धीरे अपने लोहे के समान कठोर भौतिक गुणों को त्यागकर शुद्ध स्वर्ण के समान आध्यात्मिक गुणों को प्राप्त करने लगती हैं।

लोहा → स्वर्ण

"भक्ति के संग से कठोर हृदय धीरे-धीरे कोमल और शुद्ध हो जाता है।"

2. जिस प्रकार अंकुरित होती हुई लता ऊपर की ओर बढ़ती है और उसमें दो पत्तियाँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार साधना-भक्ति की प्रक्रिया में भी दो गुण प्रकट होते हैं।

3. इनमें प्रथम को क्लेशघ्नी कहा जाता है — अर्थात् भौतिक क्लेशों से मुक्ति; और दूसरे को शुभदा कहा जाता है — अर्थात् समस्त मंगल का शुभारम्भ।

राग-भक्ति **—** ऊपरी सतह

इन दोनों पत्तियों की चिकनी ऊपरी सतह राग नामक राजा अर्थात् राग-भक्ति का क्षेत्र है।

वैधी-भक्ति **—** निचली सतह

इन पत्तियों की निचली सतह दूसरे राजा वैध अर्थात् वैधी-भक्ति का क्षेत्र है, जो तुलनात्मक रूप से निम्न स्थिति में है।

ऐसा इसलिए है क्योंकि इसका स्वभाव शास्त्रीय विधि-नियमों के पालन से उत्पन्न होने के कारण कुछ कठोरता लिए हुए होता है। साथ ही, भगवान के साथ अन्तरंग सम्बन्ध के अभाव के कारण उनके प्रति सहज एवं गहन अनुराग अभी प्रकट नहीं हुआ होता।

फिर भी, राग-भक्ति और वैधी-भक्ति दोनों में समान रूप से क्लेशघ्नी और शुभदा के लक्षण प्रकट होते हैं।

क्लेश का अर्थ **—** दुःख का कारण

चूँकि राग-भक्ति और वैधी-भक्ति दोनों ही क्लेशों का नाश करती हैं, इसलिए अब क्लेश के पाँच प्रकारों का वर्णन किया जाएगा।

भौतिक दुःखों के कारण — पाँच प्रकार के क्लेश

A. अविद्या — अज्ञान
*(*अस्थायी को स्थायी समझना आदि।*)*

B. अस्मिता — मिथ्या अहंकार
(शरीर को ही 'मैं' मानना तथा केवल इन्द्रियों से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान को स्वीकार करने की प्रवृत्ति।)

C. राग — आसक्ति
(भौतिक सुख तथा उसे प्राप्त करने के साधनों की इच्छा।)

D. द्वेष — घृणा
(दुःख तथा दुःख के कारणों के प्रति घृणा।)

E. अभिनिवेश — अर्जित स्वभाव / देहगत आसक्ति
(शारीरिक अस्तित्व में अत्यधिक आसक्ति, जिसमें मृत्यु का भय भी सम्मिलित है।)



श्रीमद्भागवतम् **3.5.2**

विदुर उवाच

सुखाय कर्माणि करोति लोको
न तैः सुखं वान्यदुपारमं वा ।
विन्देत भूयस्तत एव दुःखं
यदत्र युक्तं भगवान् वदेन्नः ॥ २ ॥

विदुर ने कहा: हे महान ऋषि! इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति सुख प्राप्त करने के लिए सकाम कर्म करता है, परन्तु इन कर्मों से न तो उसे तृप्ति प्राप्त होती है और न ही उसके दुःखों का निवारण होता है। इसके विपरीत, ऐसे कर्मों से उसके दुःख और अधिक बढ़ते जाते हैं। अतः कृपया हमें बताइए कि वास्तविक सुख प्राप्त करने के लिए मनुष्य को किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए।

क्लेश औषधि :

Sr. No.	क्लेश	

1	अविद्या	
2	अस्मिता	
3	राग	
4	द्वेष	
5	अभिनिवेश	

शुभ — मंगलमय दैवी गुण

शुभ अर्थात वे मंगलमय और दैवी गुण, जो भगवान की भक्ति के प्रभाव से भक्त के हृदय में धीरे-धीरे प्रकट होने लगते हैं।

इन शुभ गुणों में भौतिक विषयों से अनासक्ति, भगवान में आसक्ति, भगवान की सेवा के प्रति अनुकूल भाव, दया, क्षमा, सत्यनिष्ठा, सरलता, समभाव, धैर्य, गंभीरता, दूसरों को सम्मान देना, विनम्रता तथा सभी के प्रति मैत्रीपूर्ण और प्रसन्नतादायक व्यवहार जैसे गुण सम्मिलित हैं।

- भौतिक विषयों से अनासक्ति — अनासक्ति *(anāsakti)*
- भगवान में आसक्ति — भगवद्-विषय-आसक्ति *(bhagavad-viṣaya-āsakti)*
- भगवान की सेवा के प्रति अनुकूल भाव — अनुकूल्य *(anukūlya)*
- दया — कृपा *(kṛpā)*
- क्षमा — क्षमा *(kṣamā)*
- सत्यनिष्ठा — सत्य *(satya)*
- सरलता — सरलता *(saralatā)*
- समभाव — समता *(samatā)*
- धैर्य — धैर्य *(dhairya)*
- गंभीरता — गाम्भीर्य *(gambhīrya)*
- दूसरों को सम्मान देना — मानदता *(mānadatā)*
- विनम्रता तथा स्वयं सम्मान की अपेक्षा न रखना — अमानिता *(amānitā)*
- सभी के प्रति स्नेह एवं सद्भाव रखना — सर्व-सौहृदता *(sarva-sauhṛdatā)*

“जब हृदय श्रीकृष्ण से जुड़ता है, तब उसमें स्वाभाविक रूप से मंगलमय गुण खिलने लगते हैं।”

श्लोक **— 4**

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥ **— श्रीमद्भागवतम् 5.18.12**

जिस व्यक्ति के हृदय में भगवान के प्रति निष्कपट और अनन्य भक्ति होती है, उसके भीतर समस्त देवताओं के श्रेष्ठ गुण स्वाभाविक रूप से प्रकट होने लगते हैं। परंतु जो भगवान का भक्त नहीं है और जिसका मन अस्थायी भौतिक इच्छाओं के पीछे दौड़ता रहता है, उसमें वास्तविक श्रेष्ठ गुण कहाँ से आ सकते हैं?

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः ।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-

स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ — श्रीमद्भागवतम् **11.2.42**

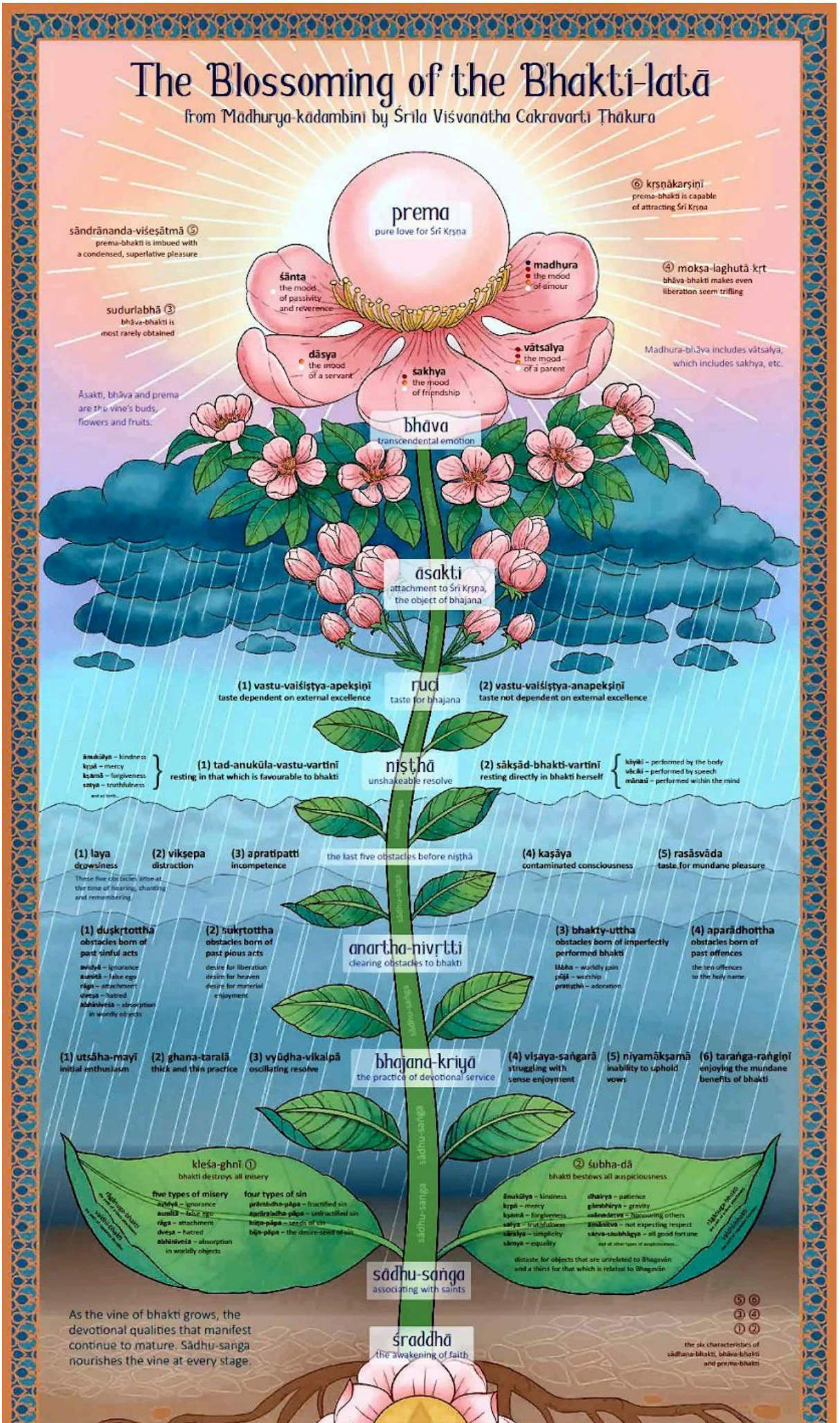
भगवान के प्रति भक्ति, भगवान के दिव्य स्वरूप एवं सेवा में रुचि, तथा अन्य भौतिक विषयों से वैराग्य — ये तीनों एक साथ प्रकट होने लगते हैं।

जिस प्रकार एक पौधे के दो पत्ते एक साथ निकलते हुए भी उनके पूर्ण रूप से खुलने की गति में थोड़ा अंतर हो सकता है, उसी प्रकार साधक के हृदय में अशुभ गुणों के दूर होने और शुभ गुणों के प्रकट होने की गति भी समान नहीं होती।

कुछ अनर्थ धीरे-धीरे समाप्त होते हैं, और उसी के साथ-साथ भक्त के हृदय में दैवी एवं मंगलमय गुण भी क्रमशः प्रकट होते जाते हैं।

इसी परिवर्तन के द्वारा साधक की भक्ति में प्रगति को समझा जा सकता है।




The Blossoming of the Bhakti-latā
from Mādhurya-kādambinī by Śrīla Viśvanātha Cakravartī Ṭhākura
prema
pure love for Śrī Kṛṣṇa
⑥ kṛṣṇākarṣiṇī
prema-bhakti is capable of attracting Śrī Kṛṣṇa
sāndrānanda-viśeṣātmā ⑤
prema-bhakti is imbued with a condensed, superlative pleasure
śānta
the mood of passivity and reverence
madhura
the mood of amour
④ mokṣa-laghutā-kṛt
bhāva-bhakti makes even liberation seem trifling
sudurlabhā ③
bhāva-bhakti is most rarely obtained
dāsya
the mood of a servant
sakhya
the mood of friendship
vātsalya
the mood of a parent
Madhura-bhāva includes vātsalya, which includes sakhya, etc.
Āsakti, bhāva and prema are the vine's buds, flowers and fruits.
bhāva
transcendental emotion
āsakti
attachment to Śrī Kṛṣna, the object of bhajana
(1) vastu-vaiśiṣṭya-apekṣiṇī
taste dependent on external excellence
ruci
taste for bhajana
(2) vastu-vaiśiṣṭya-anapekṣiṇī
taste not dependent on external excellence
ānukūlya – kindness
kṛpā – mercy
kṣamā – forgiveness
satya – truthfulness
(1) tad-anukūla-vastu-vartinī
resting in that which is favourable to bhakti
niṣṭhā
unshakeable resolve
(2) sākṣād-bhakti-vartinī
resting directly in bhakti herself
kāyikī – performed by the body
vācikī – performed by speech
mānasī – performed within the mind
(1) laya
drowsiness
(2) vikṣepa
distraction
(3) apratipatti
incompetence
These five constacles arise at the time of hearing, chanting and remembering
the last five obstacles before niṣṭhā
(4) kaṣāya
contaminated consciousness
(5) rasāsvāda
taste for mundane pleasure
(1) duṣkṛtotthā
obstacles born of past sinful acts
avidyā – ignorance
asmitā – false ego
rāga – attachment
dveṣa – hatred
abhiniveśa – absorption in worldly objects
(2) sukṛtottha
obstacles born of past pious acts
desire for liberation
desire for heaven
desire for material enjoyment
anartha-nivṛtti
clearing obstacles to bhakti
(3) bhakty-uttha
obstacles born of imperfectly performed bhakti
lābha – worldly gain
pūjā – worship
pratiṣṭhā – adoration
(4) aparādhottha
obstacles born of past offences
the ten offences to the holy name
(1) utsāha-mayī
initial enthusiasm
(2) ghana-tarala
thick and thin practice
(3) vyūḍha-vikalpā
oscillating resolve
bhajana-kriyā
the practice of devotional service
(4) viṣaya-saṅgarā
struggling with sense enjoyment
(5) niyamākṣamā
inability to uphold vows
(6) taraṅga-raṅgiṇī
enjoying the mundane benefits of bhakti
kleśa-ghnī ①
bhakti destroys all misery
five types of misery
avidyā – ignorance
asmitā – false ego
rāga – attachment
dveṣa – hatred
abhiniveśa – absorption in worldly objects
four types of sin
prārabdha-pāpa – fructified sin
aprārabdha-pāpa – unfructified sin
kūṭa-pāpa – seeds of sin
bīja-pāpa – the desire-seed of sin
② śubha-dā
bhakti bestows all auspiciousness
ānukūlya – kindness
kṛpā – mercy
kṣamā – forgiveness
satya – truthfulness
sārālya – simplicity
sāmya – equality
dhairya – patience
gāmbhīrya – gravity
sahiṣṇutva – not expecting respect
sarva-saubhāgya – all good fortune
distaste for objects that are unrelated to Bhagavān and a thirst for that which is related to Bhagavān
sādhu-saṅga
associating with saints
śraddhā
the awakening of faith
As the vine of bhakti grows, the devotional qualities that manifest continue to mature. Sādhu-saṅga nourishes the vine at every stage.
⑤ ⑥
③ ④
① ②
the six characteristics of sādhana-bhakti, bhāva-bhakti and prema-bhakti



श्रद्धा

श्रद्धा स्वाभाविक है — प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी वस्तु अथवा व्यक्ति पर विश्वास रखता ही है।

आध्यात्मिक श्रद्धा का उदय अज्ञात-सुकृति के संचय से होता है।



श्रद्धा

- श्रद्धा का अर्थ है—भक्ति से संबंधित शास्त्रों के सिद्धांतों और उपदेशों पर दृढ़ एवं निष्कपट विश्वास रखना।
- श्रद्धा का यह भी अर्थ है कि उन शास्त्रों में बताए गए भक्ति-साधना के अंगों को उत्साहपूर्वक अपनाने और उनका पालन करने की सच्ची अभिलाषा हृदय में उत्पन्न हो।
- यह श्रद्धा मुख्यतः दो प्रकार से प्रकट हो सकती है—
  स्वाभाविकी श्रद्धा — जो हृदय में सहज और स्वाभाविक रूप से जागृत होती है।
  बलोत्पादिता श्रद्धा — जो किसी शुद्ध भक्त के उपदेश, संग अथवा प्रचार को सुनकर दृढ़ विश्वास के रूप में उत्पन्न होती है।

श्रद्धा की गुणवत्ता

1. लौकिकी श्रद्धा

यह सामान्यतः लोक-परंपरा, संस्कृति, परिवार अथवा वातावरण से उत्पन्न होने वाली श्रद्धा है।

- यह श्रद्धा परंपराओं और आसपास के वातावरण के प्रभाव से उत्पन्न होती है।
- इसमें शास्त्रीय विचार अथवा गहन तात्त्विक समझ का आधार आवश्यक रूप से नहीं होता।

2. बलोत्पादिता श्रद्धा

यह श्रद्धा किसी के प्रबल उपदेश, प्रभावशाली प्रवचन, प्रेरणा अथवा आग्रह के कारण उत्पन्न होती है।

- किसी शक्तिशाली कक्षा, प्रचार अथवा प्रेरणा से व्यक्ति में श्रद्धा जागृत हो सकती है।
- प्रारंभ में यह श्रद्धा बाहरी प्रेरणा से उत्पन्न होती है, परंतु उचित साधु-संग से आगे बढ़ सकती है।

3. पारमार्थिकी श्रद्धा

यह श्रद्धा गुरु, साधु और शास्त्र के आश्रय से विकसित होती है।

- यह अधिक गहरी, स्थिर और दृढ़ श्रद्धा होती है।
- इसमें भक्त का हृदय वास्तविक रूप से भगवान की भक्ति में अधिक समर्पित होने लगता है।

सभी प्रकार की श्रद्धा से व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ सकता है, परंतु पारमार्थिकी श्रद्धा होने पर हृदय भक्ति में अधिक गहराई से जुड़ता है।

इसलिए साधक को धीरे-धीरे पारमार्थिकी श्रद्धा तक पहुँचने का प्रयास करना चाहिए।

दृढ़ श्रद्धा का एक लक्षण

जिस व्यक्ति की श्रद्धा दृढ़ होने लगती है, उसके हृदय में यह भावना जागृत होती है—

“मुझे अपने आध्यात्मिक जीवन में उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है।”

इसी प्रकार की दृढ़ श्रद्धा के कारण श्रील प्रभुपाद के शिष्य गुरु के निर्देशों को पूर्ण समर्पण के साथ स्वीकार कर सके और इतनी महान सेवाएँ सम्पन्न कर सके। वे केवल लौकिक श्रद्धा अथवा बाहरी प्रेरणा तक सीमित नहीं रहे।

श्रद्धा की दृढ़ता के अनुसार भक्तों के तीन स्तर

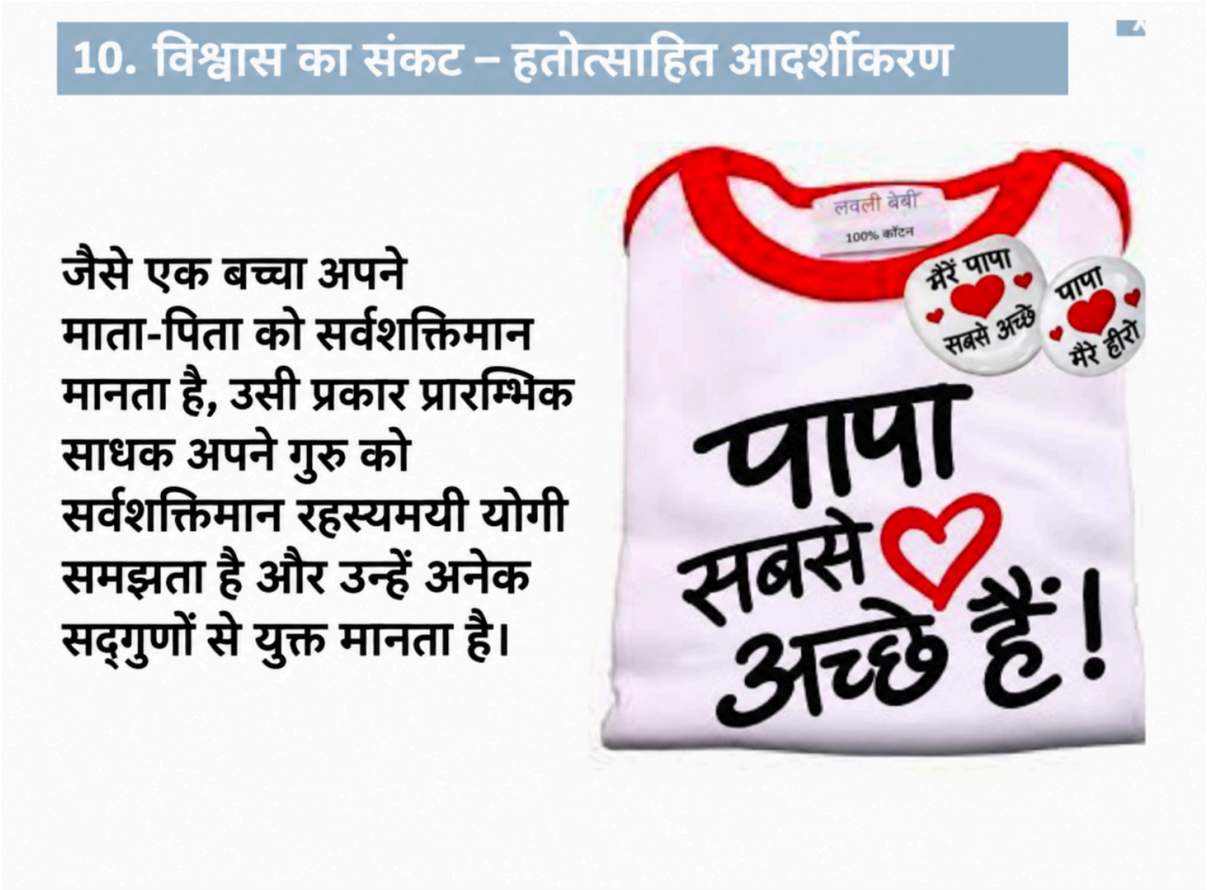
श्रद्धा की मात्रा और दृढ़ता के अनुसार भक्तों को तीन श्रेणियों में समझाया गया है—

1. कनिष्ठ अधिकारी
2. मध्यम अधिकारी
3. उत्तम अधिकारी

श्री चैतन्य-चरितामृत, मध्य-लीला **22.64**

श्रद्धावान जन हय भक्ति-अधिकारी
'उत्तम', 'मध्यम', 'कनिष्ठ'—श्रद्धा-अनुसारी

जिस व्यक्ति के हृदय में श्रद्धा है, वही भगवान की प्रेममयी भक्ति का वास्तविक अधिकारी है। श्रद्धा की दृढ़ता और गहराई के अनुसार भक्त को उत्तम, मध्यम अथवा कनिष्ठ अधिकारी के रूप में समझा जाता है।



☐ इस्कॉन में अंध विश्वास (या यहां तक कि लौकिक श्रद्धा) के लक्षण क्या हो सकते हैं?

	गुरु का आदर्शीकरण, उन्हें रहस्यमय क्षमताओं से युक्त करना लगभग अपरिहार्य है, खासकर यदि शास्त्री-श्रद्धा कमजोर है।

☐ ऐसे अंध विश्वास के क्या खतरे हो सकते हैं?

	हम अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शकों को एक चमत्कारिक व्यक्ति बना देते हैं और फिर जब अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतर पाते - तब निराशा होती है।

पुस्त कृष्ण: मैंने कहा, "श्रील प्रभुपाद, आप इस दुनिया में एकमात्र व्यक्ति हैं जिस पर मुझे भरोसा है।" श्रील प्रभुपाद ने मेरी ओर बहुत दयालुता से देखा और कहा, "मुझ पर भरोसा मत करो, मैं तुम्हें निराश कर दूंगा। कृष्ण पर भरोसा रखें. वह तुम्हें कभी निराश नहीं करेंगे।" (प्रभुपाद स्मृतियाँ, 7)

श्रील जयपताका स्वामी महाराज

एक बार श्रील प्रभुपाद कलकत्ता में अपने कक्ष में बैठे हुए थे। उसी समय एक आजीवन सदस्य, जो एक व्यवसायी थे, उन्होंने पूछा— "क्या आप हमें कोई चमत्कार दिखा सकते हैं?" श्रील प्रभुपाद ने कहा— "कुछ योगी रसगुल्ला प्रकट करके चमत्कार दिखाते हैं। मैं केवल **40** रुपये लेकर अमेरिका गया था, और बहुत थोड़े समय में आज हमारे पास पूरे विश्व में मंदिर हैं, जिनका मूल्य **400** मिलियन रुपये से भी अधिक है। क्या यह चमत्कार नहीं है?" वह व्यवसायी कुछ क्षण सोचता रहा और फिर बोला— **"**हाँ**,** यह वास्तव में एक चमत्कार है।**"** *(Memories, Vol. 1, Ch. 2)*

श्यामसुंदर प्रभु

श्यामसुंदर प्रभु ने श्रील प्रभुपाद से कहा—"प्रभुपाद, मुझे कुछ समय के लिए कहीं जाना पड़ेगा।" श्रील प्रभुपाद ने पूछा— "अच्छा? कहाँ जा रहे हो?" श्यामसुंदर प्रभु ने कहा— "मुझे अपने अतीत में किए गए किसी कार्य के कारण कुछ समय के लिए जेल जाना पड़ेगा।" यह सुनकर श्रील प्रभुपाद ने बड़े सहज और आश्वासनपूर्ण भाव से कहा—"कोई बात नहीं। भगवान कृष्ण का जन्म भी तो जेल में ही हुआ था।" फिर हँसते हुए उन्होंने कहा— "जेल में भी तुम्हारा कोई अहित नहीं कर सकता। तुम बस जप करते रहना**...**"



यो यो यां यां तनुं भक्तः
श्रद्धयार्चितुम् इच्छति।

तस्य तस्याचलां श्रद्धां
तामेव विदधाम्यहम्॥ **(भगवद्गीता 7.21)**

मैं प्रत्येक जीव के हृदय में परमात्मा के रूप में स्थित हूँ। जब कोई व्यक्ति किसी विशेष देवता की श्रद्धापूर्वक पूजा करने की इच्छा करता है, तब मैं उसकी उसी देवता के प्रति श्रद्धा को दृढ़ कर देता हूँ, जिससे वह उस देवता की भक्ति एवं उपासना में स्थिर हो सके।



तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजंतमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥

उन पर विशेष कृपा करने के लिए, मैं उनके हृदय में स्थित होकर ज्ञान के प्रकाशमान दीपक से अज्ञान से उत्पन्न अंधकार का नाश कर देता हूँ।

श्रद्धा जिस प्रकार भी विकसित होती है, वह उसे गुरु के चरणकमलों की शरण लेने और उनसे उचित आचरण (सदाचार) के विषय में पूछने के लिए प्रेरित करती है।

उनके निर्देशों का पालन करने से उस व्यक्ति को स्नेहपूर्ण समान विचार वाले भक्तों के साथ संबंध तथा अनुभवी भक्तों का संग (साधु-संग) प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता है।

श्रद्धा के 3 गुण

सात्त्विक्य आध्यात्मिकी श्रद्धा
कर्म-श्रद्धा तु राजसी
तामस्य अधर्मे या श्रद्धा
मत्-सेवायां तु निर्गुणा **(श्रीमद्भागवतम् 11.25.27)**

आध्यात्मिक जीवन की ओर निर्देशित श्रद्धा सत्त्वगुण में होती है, फल की इच्छा से किए जाने वाले कर्मों में स्थित श्रद्धा रजोगुण में होती है, अधार्मिक कार्यों में स्थित श्रद्धा तमोगुण में होती है, किन्तु मेरी भक्ति-सेवा में श्रद्धा पूर्णतः निर्गुण एवं दिव्य होती है।

- सात्विकी आध्यात्मिकी श्रद्धा — आध्यात्मिक जीवन के प्रति श्रद्धा
- राजसी कर्म-श्रद्धा — सकाम कर्मों में स्थित श्रद्धा
- तामसी अधर्मे या श्रद्धा — अधार्मिक कार्यों में श्रद्धा
- निर्गुणा मत्-सेवायाम् — मेरी भक्ति-सेवा में श्रद्धा

'श्रद्धा'-शब्दे — विश्वास कहे सुदृढ़ निश्चय
कृष्णे भक्ति कैले सर्व-कर्म कृत हय

श्रद्धा वह दृढ़ और अटल विश्वास है कि श्रीकृष्ण की दिव्य प्रेममयी सेवा करने से अन्य सभी आवश्यक कर्तव्य स्वतः ही पूर्ण हो जाते हैं। ऐसी श्रद्धा भक्ति-सेवा के अनुकूल होती है।

देवर्षि-भूताप्त-नृणां पितृणां
न किंकरो नायम् ऋणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥

हे राजन्, जो व्यक्ति सभी भौतिक कर्तव्यों को त्यागकर पूर्ण रूप से मुकुन्द के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर लेता है, जो सबको आश्रय प्रदान करने वाले हैं, वह देवताओं, महान ऋषियों, सामान्य जीवों, संबंधियों, मित्रों, मनुष्यों अथवा अपने दिवंगत पूर्वजों का ऋणी नहीं रहता।

क्योंकि ये सभी जीव परम भगवान के अंश हैं, इसलिए जो व्यक्ति भगवान की सेवा में पूर्णतः समर्पित हो गया है, उसे इनकी अलग से सेवा करने की आवश्यकता नहीं रहती।
(श्रीमद्भागवतम् 11.5.41)

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर — गीतमाला

योग यज्ञ सब छार, श्रद्धा सकलेर सार
सेइ श्रद्धा हृदये याहार
उदियाछे एक बिन्दु, क्रमे भक्ति-रस-सिन्धु
लाभे तार हय अधिकार

योग और धार्मिक अनुष्ठान सभी व्यर्थ हैं; श्रद्धा ही सबका सार है। जिसके हृदय में ऐसी श्रद्धा विद्यमान है और जो अमृत की केवल एक बूँद का आस्वादन करता है, वह धीरे-धीरे भक्ति-रस के महासागर में प्रवेश करने की पात्रता प्राप्त करता है।

"पवित्र हरिनाम का शुद्ध कीर्तन ही समस्त धर्म का सार है।" — श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

नामेर विवाद मात्र शुनिया तो' ज्वले गात्र
लौहे यदि बलह काञ्चन
तबु लौह लौह रय, काञ्चन तो' कभु नय
मणि स्पर्श नाहे जत-खन

जब भी मैं नाम के विषय में विवाद सुनता हूँ, मेरा शरीर जलने लगता है। यह ऐसा है जैसे लोहे को सोना समझ लिया जाए। लोहा सदैव लोहा ही रहता है और जब तक उसे पारस-मणि का स्पर्श न हो, वह कभी सोना नहीं बन सकता।

अधिकांश भक्तों का सामान्य प्रश्न:

मैं उन्नति क्यों नहीं कर रहा हूँ?

सामान्य कारण यह है:
अभी श्रद्धा का स्तर ही आरम्भ नहीं हुआ है!

श्रद्धा का अर्थ:

1. भक्ति की प्रक्रिया में दृढ़ विश्वास
2. भौतिक जीवन के प्रति गहरा संदेह

श्रद्धा का विकास कैसे आरम्भ करें?

- व्यक्तिगत संग के बिना श्रद्धा का विकास करना बहुत कठिन है, क्योंकि श्रद्धा का विकास केवल संग में ही होता है।
- फिर वैष्णवों में यह श्रद्धा, शास्त्रों में श्रद्धा के रूप में बढ़ती है।
- इस प्रकार लौकिक-श्रद्धा के विपरीत शास्त्रीय-श्रद्धा का विकास होता है।

अपनी श्रद्धा को पोषण दें:

1. दर्शन
2. भक्त-संग
3. अभ्यास — इससे अधिक अनुभव प्राप्त होता है और हमारी श्रद्धा बढ़ती है।

अपने संदेहों को पोषण न दें:

1. चर्चा करें
2. विलम्ब करें
3. कम महत्त्व दें — किसी बात को वास्तव में जितना महत्त्वपूर्ण या बुरा है, उससे कम महत्त्वपूर्ण या कम बुरा दिखाना।

गुरुदास: वह श्रद्धा क्या है?

प्रभुपाद: श्रद्धा का अर्थ है आध्यात्मिक गुरु में विश्वास।

(वार्तालाप, **13** फरवरी **1974)**

वे 5 प्रमुख बिंदु, जो श्रीकृष्ण भावनामृत, ISKCON एवं श्रील प्रभुपाद के प्रति हमारी श्रद्धा और विश्वास को दृढ़ करते हैं।

वे 5 प्रमुख बिंदु, जो भक्ति, ISKCON अथवा श्रील प्रभुपाद के प्रति हमारे मन में संदेह उत्पन्न कर सकते हैं।

श्री प्रेम-विवर्त

एइ-रूपे संसारे भ्रमिते कोन जन
साधु-संगे निज-तत्त्व अवगत हन

निज-तत्त्व जानि' आर संसार ना छाय
"केन वा भजिनु माया" करे हाय हाय

केदे बले, "ओहे कृष्ण आमि तव दास
तोमार चरण छाड़ि' हइला सर्व-नाश"

कृपा करि' कृष्ण तारे छाड़ान संसार
काकुति करिया कृष्णे यदि डाके एक-बार

मायाके पिछाने राखि' कृष्ण-पाने छाय
भजिते भजिते कृष्ण-पद-पद्म पाय

कृष्ण तारे देन निज चित्-शक्तिर बल
माया आकर्षण छाड़े हइया दुर्बल

जीव गोस्वामी श्रद्धा के लक्षणों का वर्णन करते हैं

1. शरणागति।
2. सफलता न मिलने पर भी भक्ति की प्रक्रिया को कभी न छोड़ना।
3. महत्-अपराध न करना।
4. साधना में असफल होने पर पश्चाताप करना।
5. जान-बूझकर पापकर्म न करना।
6. दुराचार न करना (स्त्री-संग, धन के प्रति अनुचित आसक्ति, दूसरों को हानि पहुँचाना आदि)।
7. विष्णु-शास्त्र के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में आसक्ति न रखना।



"ऐसे आध्यात्मिक गुरु को पूर्ण समर्पण के साथ स्वीकार करना चाहिए और मिथ्या प्रतिष्ठा का त्याग करके एक विनम्र सेवक की भाँति उनकी सेवा करनी चाहिए। आत्म-साक्षात्कारी आध्यात्मिक गुरु की संतुष्टि ही आध्यात्मिक जीवन में उन्नति का रहस्य है।"
(भगवद्गीता **4.34,** तात्पर्य**)**

श्रील रूप गोस्वामी एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुर बताते हैं कि शरणागति क्या है

दैन्य, आत्म-निवेदन, गोप्तृत्वे वरण
'अवश्य रक्षिबे कृष्ण'—विश्वास, पालन

भक्ति-अनुकूल-मात्र कार्येर स्वीकार
भक्ति-प्रतिकूल-भाव वर्जनाङ्गीकार

षड्-अंग शरणागति होइबे जाहार
ताहार प्रार्थना शुने श्री-नन्द-कुमार

जिस भक्त में शरणागति के ये छह अंग प्रकट होते हैं, श्री नन्दनन्दन कृष्ण उसकी प्रार्थना अवश्य सुनते हैं।

अमृत की दूसरी वर्षा

द्वितीय अवस्था — साधु-संग

❖ श्रद्धा जिस प्रकार भी विकसित हो, वह साधक को गुरु के चरण-कमलों की शरण ग्रहण करने और उनसे उचित आचरण अर्थात् सदाचार के विषय में पूछने के लिए प्रेरित करती है।

❖ गुरु के निर्देशों का पालन करने से साधक को स्नेहपूर्ण, समान भाव वाले भक्तों के साथ संबंध स्थापित करने तथा अनुभवी एवं तत्त्वदर्शी भक्तों की संगति अर्थात् साधु-संग प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता है।

अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (ISKCON) की स्थापना भक्तों के बीच होने वाले इन छह प्रकार के प्रेमपूर्ण आदान-प्रदान को सुगम बनाने के लिए की गई है। इस संस्था की शुरुआत एक व्यक्ति द्वारा की गई थी, परंतु क्योंकि लोग आगे आकर इस प्रेमपूर्ण आदान-प्रदान की प्रक्रिया में सम्मिलित हो रहे हैं, इसलिए यह संस्था

आज पूरे विश्व में विस्तार कर रही है।
(उपदेशामृत, श्लोक 4, तात्पर्य)

साधु-संग की शक्ति **—** भक्ति की जड़ और प्रेम की जीवनरेखा

कृष्ण-भक्ति-जन्म-मूल हय 'साधु-संग'
कृष्ण-प्रेम जन्मे, तेँहो पुनः मुख्य अंग

"भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति का मूल कारण उन्नत भक्तों का संग है। यहाँ तक कि जब किसी के हृदय में सुप्त कृष्ण-प्रेम जागृत हो जाता है, तब भी भक्तों का संग अत्यंत आवश्यक बना रहता है।"
(चैतन्य-चरितामृत, मध्य 22.83)

साधु-संग

Sadhu-sanga - kaumara

(till 5 years)

- **Learns how to understand sadhus and to speak as a devotee**
- **Association with shelter-giving superiors**
- **Development of mindfulness & introspection**



- वैष्णव सदाचार तथा दर्शन के विषय में बोलना सीखता है, परंतु अभी वास्तविक अनुभूति नहीं होती।
- यद्यपि वह अच्छी तरह बोल सकता है, फिर भी संभव है कि वह उत्तरदायित्व ग्रहण न करे।

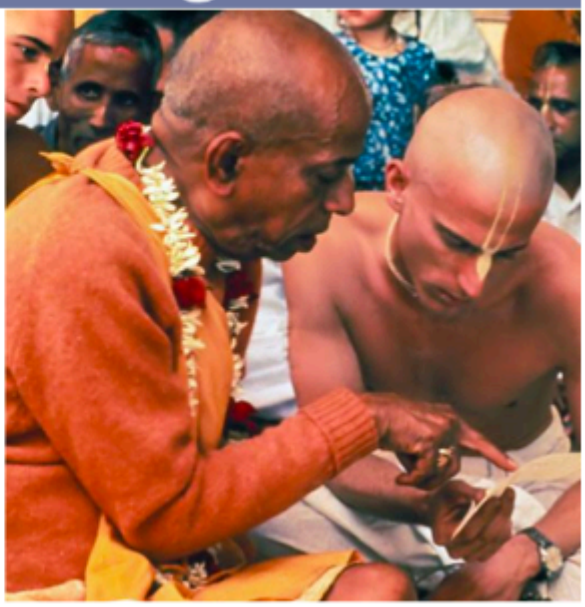
साधु की परिभाषा

- साधु वह है, जो निरंतर भक्ति में लगे रहने के लिए दृढ़-संकल्पित हो।
- केवल कोई भी व्यक्ति साधु नहीं कहलाता; जो भक्त भक्ति के प्रति गंभीर और निष्ठावान है, वही वास्तविक अर्थ में साधु कहलाता है।

Sadhu-sanga

sadhnoti sadhayatiti sadhu—"Those who are practicing sadhana themselves and also make others do sadhana are called sadhus."

Verbal root ***sādh*** – to achieve, to be succesful, to straighten.



तितिक्षवः कारुणिकाः
सुहृदः सर्व-देहिनाम्
अजात-शत्रवः शान्ताः
साधवः साधु-भूषणाः

साधु के लक्षण हैं कि वह सहनशील, दयालु तथा सभी जीवों का हितैषी होता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता, वह शांत रहता है, शास्त्रों के अनुसार आचरण करता है और उसके सभी गुण अत्यंत उदात्त होते हैं।
(श्रीमद्भागवतम् 3.25.21)

- वरिष्ठ भक्तों का संग तथा समान स्तर के भक्तों का संग — दोनों ही साधु-संग के अंतर्गत आते हैं।
- संग के लिए **20, 60, 20** का अनुपात रखा जा सकता है।

साधु हमें दो मुख्य चीजें देते हैं**:**

1. आकांक्षा — अपने वचनों के द्वारा।
2. प्रेरणा — अपने स्वयं के आचरण और उदाहरण के द्वारा।

साधु-संग के तीन महत्वपूर्ण पक्ष**:**

1. सजातीय — समान भाव और समान उद्देश्य वाले।
2. स्निग्ध — स्नेहपूर्ण और प्रेमपूर्वक मार्गदर्शन देने वाले।
3. आश्रय (स्वतो-वर) — अपने से वरिष्ठ, जिनसे हमें प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त हो।

Sadhu-sanga

Sanga *- samyak rūpeṇa anugamanam*

To follow the sadhu completely, externally and internally, by activities and by mood.



“साधु-संग का अर्थ है—प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु की संगति करना और उनकी आज्ञाओं का निष्ठापूर्वक पालन करना।”
— श्रील प्रभुपाद, वार्तालाप, 19 अगस्त 1968

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर — गुरुदेव*!* से प्रार्थना

जोग्यता-विचारे, किछु नाही पाइ, तोमार करुणा सार
करुणा ना होइले, कांदिया कांदिया, प्राण ना राखिबो आर

“हे गुरुदेव! जब मैं अपनी योग्यता का विचार करता हूँ, तो अपने भीतर कोई भी योग्यता नहीं पाता। मेरे लिए तो केवल आपकी अहैतुकी कृपा ही एकमात्र आश्रय है। इसलिए यदि मुझे आपकी कृपा प्राप्त न हो, तो मैं निरंतर रोता ही रहूँगा; आपके कृपा-विहीन होकर इस जीवन को धारण करना भी मेरे लिए असहय हो जाएगा।”



▸▸▸ When the heart of the jiva is controlled by such sraddha, **he sheds tears of remorse and applies himself to following a pure Vaisnava sadhu. Thus at this second stage, sadhu-sanga brings the jiva to the point of finding the shelter of a guru."** Jaiva dharma, 17

- यहाँ से साधक गुरु के प्रणाम-मंत्र का जप प्रारम्भ कर सकता है — गुरु-पादाश्रय।

श्रीमद्भागवतम् **3.25.25**

सतां प्रसङ्गान् मम वीर्य-संविदो
भवन्ति हृत्-कर्ण-रसायनाः कथाः।
तज्जोषणाद् आश्वपवर्ग-वर्त्मनि
श्रद्धा रतिर् भक्तिर् अनुक्रमिष्यति॥

शुद्ध भक्तों की संगति में भगवान के दिव्य चरित्र और लीलाओं की चर्चा हृदय और कानों को अत्यन्त प्रिय और तृप्तिदायक लगती है। ऐसे ज्ञान का पालन और मनन करने से साधक धीरे-धीरे मुक्ति के मार्ग पर आगे बढ़ता है। तत्पश्चात वह मुक्त होता है और उसकी आसक्ति स्थिर हो जाती है। फिर वास्तविक भक्ति और भक्ति-सेवा का आरम्भ होता है।

साधु-संग में आने वाले खतरे:

1. अन्ध-श्रद्धा
2. अत्यधिक परिचय — आध्यात्मिक बनाम भौतिक
3. अपराध

लिखिए कि भक्तों के साथ भौतिक परिचय और अपराधों से किस प्रकार बचा जा सकता है।

- दृढ़ता को प्रभावित करने वाले **3** कारण **—** श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार**:**

1. अभक्तों की संगति
2. भक्तों की संगति से बचना
3. भक्तों की संगति में अपराध करना

साधु-संग की नींव — कृष्ण का आदान-प्रदान

लिखिए कि साधु-संग के तीनों स्तरों पर — कनिष्ठ, समान स्तर के और वरिष्ठ भक्तों के साथ — हम किस प्रकार कृष्ण को साझा कर सकते हैं और कृष्ण-कथा को ग्रहण कर सकते हैं।

Juniors	1 2 3
Equals	1 2 3
Seniors	1 2 3

चैतन्य-चरितामृत, मध्य **22.54**

‘साधु-संग’, ‘साधु-संग’ **—** सर्व-शास्त्रे कय
लव-मात्र साधु-संगे सर्व-सिद्धि हय

दीक्षा के **3** चरण

1. गुरु-पादाश्रय

गुरु शिष्य की परीक्षा करते हैं और शिष्य भी गुरु को समझता एवं परखता है।

2. दीक्षा-संस्कार

गुरु मंत्र प्रदान करते हैं और शिष्य को गुरु-परम्परा से जोड़ते हैं।

3. शिक्षा और सेवा

चैतन्य-चरितामृत, मध्य **22.115**

गुरु-पादाश्रय, दीक्षा, गुरुर सेवन
सद्-धर्म-शिक्षा-पृच्छा, साधु-मार्गानुगमन

श्रील जीव गोस्वामी बताते हैं:

1. साधु-संग का प्रथम स्तर

साधुओं से शास्त्रों के विषय में श्रवण करना और अपनी श्रद्धा को दृढ़ करना — लौकिक श्रद्धा से पारमार्थिक श्रद्धा तक।

2. साधु-संग का दूसरा स्तर

साधुओं से भजन सीखना।

साधु-संग:

1. मूल सिद्धान्तों, मूल शब्दों और उनकी परिभाषाओं को कंठस्थ करना आवश्यक है।

(अमर-कोश**)**

2. मूल सिद्धान्तों, मूल शब्दों और उनकी परिभाषाओं को कंठस्थ करना आवश्यक है।

(अमर-कोश)

1. विकसित करने योग्य मुख्य योग्यता है — वरिष्ठों, शिक्षकों और गुरुओं के प्रति सम्मान।
2. इस अवस्था में प्रारम्भिक साधक के मन में बहुत से प्रश्न उत्पन्न होने चाहिए।
3. यदि प्रश्न उत्पन्न नहीं होते, तो सम्भवतः इसका अर्थ है कि बुद्धि का उचित विकास नहीं हो रहा है और गुरु को केवल अन्ध एवं भावनात्मक रूप से स्वीकार किया जा रहा है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर द्वारा समर्पण का अनुभव

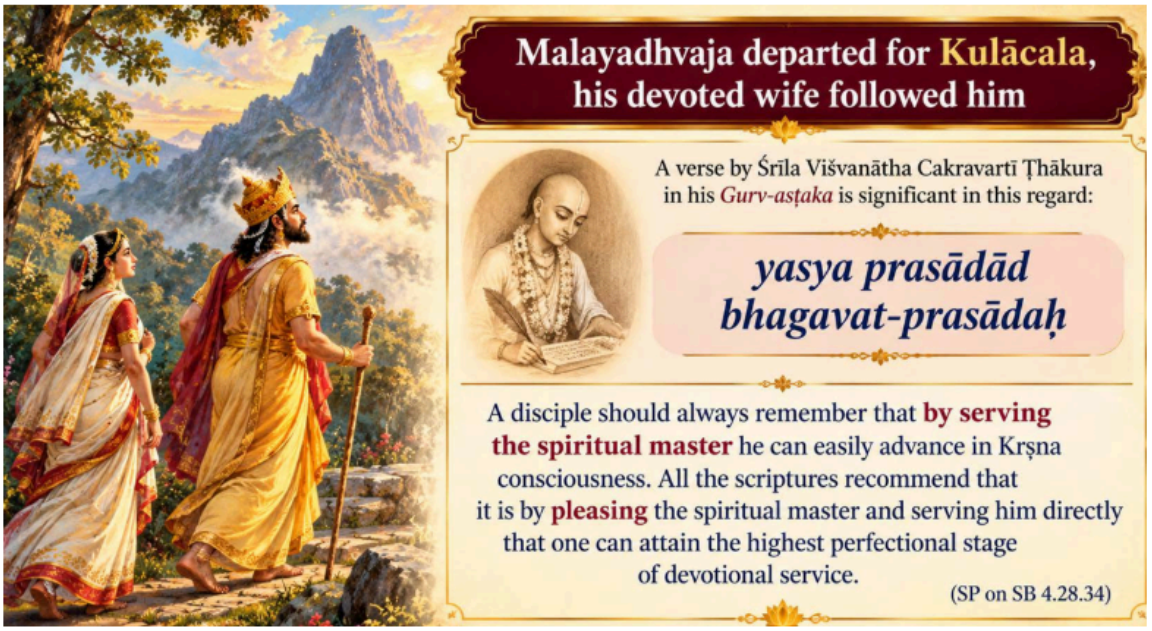
मैंने अपने गुरुदेव को वैराग्य में अद्वितीय माना था, किन्तु मुझे ऐसा लगता था कि विद्या के विषय में उनमें कुछ कमी है। परन्तु उन्होंने मेरे शास्त्रीय अध्ययन से उत्पन्न अहंकार और दुस्साहस को चूर्ण कर दिया। अपनी कृपा के प्रहार से उन्होंने मुझे यह दिखाया कि जिसे मैं सर्वोच्च आदर्श मान रहा था, वह वास्तव में अत्यन्त निम्न और तुच्छ था। जब उनकी कृपा से वह शिक्षा पहली बार मेरे कानों में प्रवेश हुई, तब मेरी छोटी-सी बुद्धि में उस प्रकार के दिव्य ज्ञान को धारण करने की क्षमता नहीं थी। फिर भी मेरे जैसे सभी मूर्खों को उन्होंने ऐसे उच्च आध्यात्मिक विषयों का श्रवण करने का अवसर प्रदान किया।

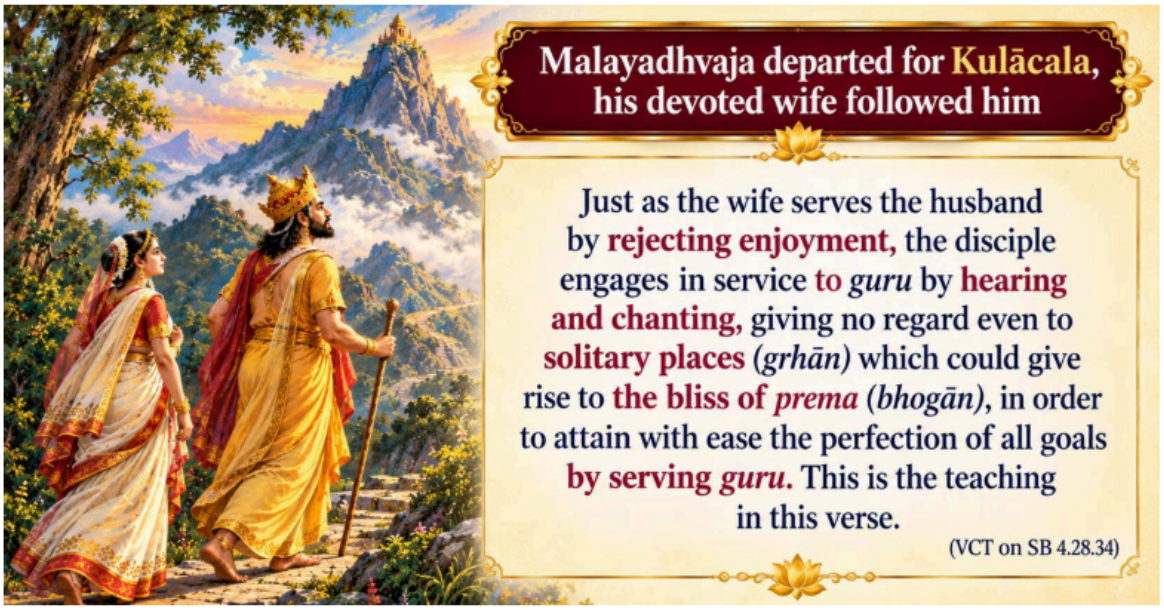
मुख्य बाधा है — समर्पण करने में संकोच तथा स्वयं को गुरु के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित करने में हिचकिचाहट।

गुरु के साथ विश्वासपूर्ण सम्बन्ध इस संकट को पार करने और स्वयं को समर्पित करने में सहायता करते हैं। विश्वास का अभाव ही बाधा है।

यदि पिछली अवस्था में वास्तविक विश्वास विकसित नहीं हुआ है, तो इस संकट को पार करना अत्यन्त कठिन होगा। (उदाहरण: पुरुषोत्तम)







अजात-शत्रुः कृत-मैत्रो हुताग्निर्
विप्रान् नत्वा तिल-गो-भूमि-रुक्मैः।
गृहं प्रविष्टो गुरु-वन्दनाय
न चापश्यत् पितरौ सौबलीं च॥ — श्रीमद्भागवतम् **1.13.31**

महाराज युधिष्ठिर, जिनका कोई शत्रु उत्पन्न ही नहीं हुआ था, अपनी नित्य प्रातःकालीन धार्मिक क्रियाएँ पूर्ण करने के पश्चात भगवान की प्रार्थना करते, सूर्यदेव को अग्निहोत्र अर्पित करते तथा ब्राह्मणों को प्रणाम करके तिल, गौएँ, भूमि और स्वर्ण का दान करते थे।

इसके पश्चात वे अपने वृद्ध एवं पूजनीय पारिवारिक जनों को प्रणाम करने के लिए महल में प्रवेश किए। किन्तु वहाँ उन्होंने अपने दोनों चाचाओं तथा राजा सुबल की पुत्री, अपनी चाची को नहीं पाया।

भगवद्गीता **2.41** में व्यवसायात्मिका बुद्धि पर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका

“मेरे गुरुदेव ने मुझे श्रीभगवान के श्रवणम्, कीर्तनम्, स्मरणम्, पाद-सेवनम् आदि के विषय में जो निर्देश दिए हैं, वही मेरी साधना हैं, वही मेरी सिद्धि हैं और वही मेरा जीवन हैं।

न तो साधना की अवस्था में और न ही सिद्धि की अवस्था में मैं इन निर्देशों का त्याग कर सकता हूँ। मेरा एकमात्र अभिलाषा और एकमात्र कार्य यही है कि मैं उन निर्देशों का पालन करूँ। इसके अतिरिक्त मेरे मन में कोई अन्य इच्छा या कार्य नहीं है, यहाँ तक कि स्वप्न में भी नहीं।

उन निर्देशों का पालन करते हुए मुझे सुख प्राप्त हो या दुःख, अथवा मेरा भौतिक जीवन नष्ट हो जाए या न हो — इससे मेरी कोई हानि नहीं है।”

“इस प्रकार की दृढ़ और निश्चयात्मक बुद्धि केवल शुद्ध भक्ति में ही सम्भव है, जो कपट और छल से पूर्णतः रहित होती है।”

भजन-क्रिया — अनिष्ठित भजन

- ‘क्रिया’ शब्द का अर्थ है — अभ्यास।
  भजन-क्रिया का अर्थ है भक्तिमय सेवा के व्यवस्थित अभ्यास का आरम्भ, जो श्रवणम् और कीर्तनम् से प्रारम्भ होता है।
- इसका अर्थ है कि हम व्यवस्थित रूप से यह सीखना आरम्भ करते हैं कि एक भक्त के रूप में किस प्रकार आचरण करना है — जैसे प्रातःकाल जल्दी उठना, निश्चित संख्या में जप करना, श्रीमद्भागवतम् का श्रवण करना आदि।



- एक भक्त के रूप में कैसे आचरण करना है, यह सीखना।

- व्यावहारिक भक्ति-सेवा — यह स्वयं भजन नहीं है, बल्कि भजन-क्रिया, अर्थात् भजन का अभ्यास है।
- भज — सेवा
  क्रिया — अभ्यास
- कैसे आचरण करना है, यह सीखना — एक साधु के आचरण का उत्तम अनुकरण करना।



अनुशासन का अर्थ है — सुधार हेतु दण्ड और कठोरता

लालयेत् पञ्च-वर्षाणि, दश-वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥

पाँच वर्ष की आयु तक पुत्र का प्रेमपूर्वक पालन-पोषण करना चाहिए, और उसके बाद अगले दस वर्षों तक उसे अनुशासन में रखना चाहिए।



भजन-क्रिया में समान स्तर के भक्तों के साथ मैत्री और निकट सहयोग भी सम्मिलित है

"भगवान ने कहा: हे राजपुत्रों! तुम सबके बीच जो प्रेमपूर्ण मैत्री-भाव है, उससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम सभी एक ही कार्य में लगे हुए हो — मेरी भक्ति-सेवा में। तुम्हारी आपसी मैत्री से मैं इतना प्रसन्न हूँ कि मैं तुम सबका मंगल चाहता हूँ। अब तुम मुझसे कोई वरदान माँग सकते हो।"— श्रीमद्भागवतम् 4.30.8

अमृत की द्वितीय वर्षा — तृतीय अवस्था: भजन-क्रिया

श्लोक – 7

1. इसके बाद भजन-क्रिया आती है, जिसमें साधक विभिन्न प्रकार की भक्तिमयी गतिविधियों का अभ्यास करना प्रारम्भ करता है।

2. यह भी दो प्रकार की होती है: अस्थिर (अनिष्ठिता) और स्थिर (निष्ठिता)।

3. अस्थिर रूप से की जाने वाली भक्ति-साधना के क्रमशः छह प्रकार हैं:

1. मिथ्या आत्मविश्वास (उत्साहमयी)

2. अनियमित प्रयास (घन-तरला)

3. निर्णयहीनता (व्यूढ़-विकल्प)

4. इन्द्रियों के साथ संघर्ष (विषय-संगरा)

5. नियमों का पालन न कर पाना (नियमाक्षमा)

6. भक्ति से मिलने वाली सुविधाओं का आनंद लेना (तरंग-रंगिणी)



भजन-क्रिया की अवस्थाएँ

उत्साहमयी (कट्टर उत्साह)

एक ब्राह्मण बालक, जिसने अभी-अभी शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ किया है, ऐसा सोचने लगता है कि वह तुरंत ही एक महान विद्वान बन गया है और सबकी प्रशंसा पाने योग्य है।

इसी प्रकार, जो व्यक्ति अभी-अभी भक्ति आरम्भ करता है, वह भी यह सोचने का साहस कर सकता है कि उसने सब कुछ जान और समझ लिया है।

ऐसे साधक को उत्साहमयी कहा जाता है, अर्थात् अत्यधिक उत्साह से फूल जाना।

घन-तरला (यांत्रिक गतिविधियाँ)

कभी बहुत उत्साह, कभी शिथिलता।

वही बालक कभी अपने अध्ययन में बहुत परिश्रमपूर्वक लग जाता है, परन्तु कभी शास्त्रों को समझ न पाने और वास्तविक रुचि के अभाव के कारण लापरवाह हो जाता है।

इसी प्रकार, एक नया भक्त कभी विभिन्न प्रकार की भक्ति-साधनाओं का अभ्यास करता है और कभी उनकी उपेक्षा कर देता है।

कभी बहुत परिश्रमी और कभी लापरवाह होने के कारण उसके इस प्रयास को घन-तरला कहा जाता है — अर्थात् कभी गाढ़ा, कभी पतला।

व्यूढ़-विकल्प (अनिर्णय)

अनेक विकल्पों पर विचार करना — भ्रम की अवस्था।

“क्या मैं गृहस्थ जीवन में प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए अपनी पत्नी और बच्चों को कृष्णभावनामृत में लगाऊँ और भगवान की उपासना करूँ?

या उन सबका त्याग कर वृन्दावन चला जाऊँ और बिना किसी व्यवधान के पूर्ण समय श्रवण और कीर्तन करते हुए अपने जीवन को सिद्ध करूँ?

क्या मैं जीवन की अंतिम अवस्था तक प्रतीक्षा करूँ, सभी प्रकार के भोगों का अनुभव कर लेने के बाद, जब मुझे यह पूर्ण रूप से समझ आ जाए कि यह सम्पूर्ण भौतिक संसार केवल दुःखरूपी वनाग्नि है?

या मुझे अभी ही त्याग कर देना चाहिए?

या फिर मैं केवल शरीर के निर्वाह के लिए कार्य करता रहूँ। बाद में, अपनी सभी इच्छाओं को संतुष्ट कर लेने के पश्चात, मैं वृन्दावन जाकर चौबीसों घंटे भगवान की उपासना में लग जाऊँ।

गृहस्थ जीवन केवल आसक्त व्यक्ति के लिए बन्धन है; एक भक्त के लिए गृहस्थ जीवन में कोई हानि नहीं है।

तो क्या मैं घर में रहकर जप करूँ, या श्रवण करूँ, या सेवा में लगूँ?

बल्कि जैसे महाराज अम्बरीष गृहस्थ जीवन में रहते हुए भक्ति के सभी अंगों का पालन करते थे, मैं भी वैसे ही करूँगा।”

इस प्रकार मन गृहस्थ जीवन और त्याग के बीच बार-बार डगमगाता रहता है।

जब व्यक्ति इस प्रकार अनेक प्रकार के विकल्पों की कल्पना करता रहता है, तो इसे व्यूढ़-विकल्प कहा जाता है, अर्थात् अत्यधिक विचार-विमर्श और कल्पना।

बार-बार परिवर्तन करने की इच्छा — बाहरी परिवर्तन।

विषय-संगरा

विषयाविष्टचित्तानां विष्ण्वावेशः सुदूरतः।
वारुणीदिग्गतं वस्तु व्रजन्नैन्द्रीं किमाप्नुयात्॥

इन्द्रिय-तृप्ति के विषयों के साथ संघर्ष।

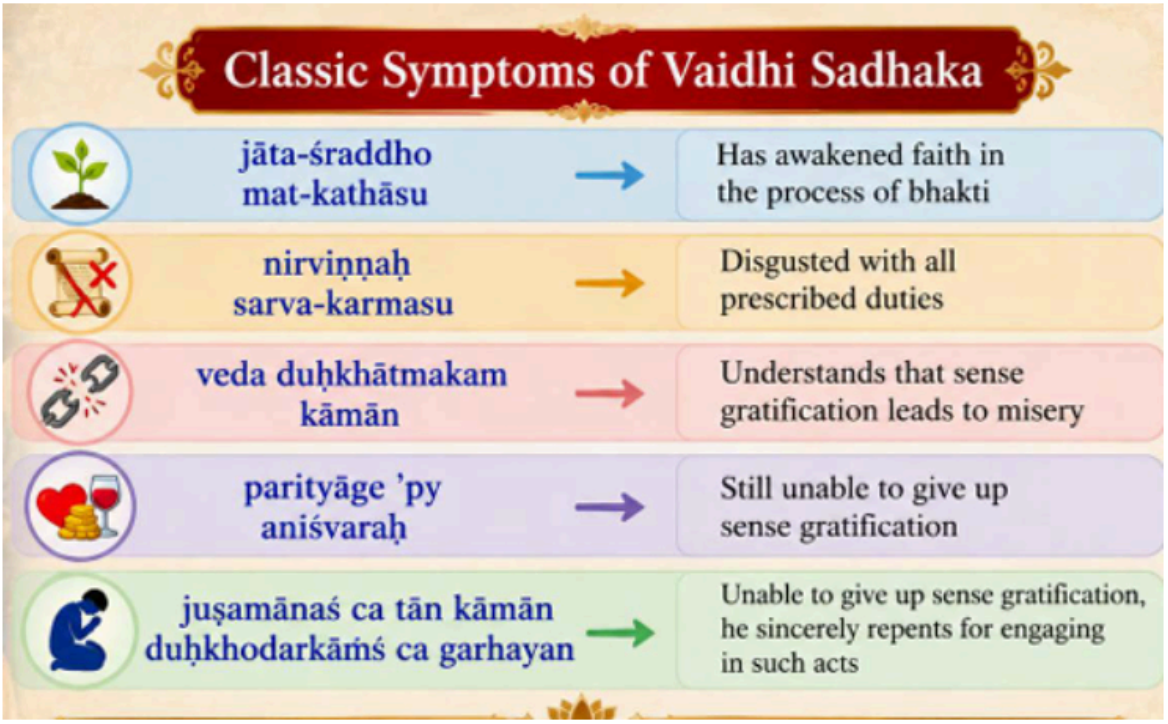
जिसका हृदय भौतिक विषयों में डूबा हुआ है, उसके लिए भगवान विष्णु में मन को स्थिर करना बहुत दूर की बात है। जो वस्तु पश्चिम दिशा में है, क्या कोई व्यक्ति पूर्व दिशा में जाकर उसे प्राप्त कर सकता है?

जब भक्त यह समझता है कि भौतिक भोग उसे बलपूर्वक अपनी ओर खींच रहा है और कृष्ण की सेवा में उसकी स्थिरता को कम कर रहा है, तब वह अपनी आसक्तियों का त्याग करने और हरिनाम का आश्रय लेने का संकल्प करता है।

परन्तु अनेक बार त्याग करने का उसका प्रयास उसी वस्तु के भोग में समाप्त हो जाता है, जिसे वह त्यागने का प्रयास कर रहा था।

ऐसे साधकों के लिए श्रीकृष्ण का निर्देश-
ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः।

प्रसन्न रहकर, महान श्रद्धा और दृढ़ निश्चय के साथ मेरी भक्ति करो।



भगवद्गीता **2.59**

विषया विनिवर्तन्ते
निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य
परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

यद्यपि देहधारी जीव को इन्द्रिय-भोग से दूर रखा जा सकता है, फिर भी उसके भीतर इन्द्रिय-विषयों का रस बना रहता है। किन्तु जब वह उच्चतर रस का अनुभव करता है, तब उन विषयों से निवृत्त होकर उसकी चेतना स्थिर हो जाती है।

हरे कृष्ण महामंत्र का जप करने से हृदय में जो वास्तविक परिवर्तन होता है, उसकी परीक्षा यह है कि व्यक्ति भौतिक भोग से विरक्त होने लगता है। यही वास्तविक परिवर्तन है। भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र च (भागवत 11.2.42)। यदि कोई वास्तव में आध्यात्मिक जीवन में उन्नति कर रहा है, तो उसे भौतिक भोग से अत्यन्त विरक्त होना चाहिए। यदि कभी ऐसा देखा जाए कि कोई कनिष्ठ-अधिकारी (नवीन भक्त) हरे कृष्ण मंत्र का जप करते समय अपनी आँखों में कृत्रिम आँसू दिखाता है, किन्तु फिर भी भौतिक वस्तुओं से पूर्णतः आसक्त रहता है, तो वास्तव में उसके हृदय में परिवर्तन नहीं हुआ है। यह परिवर्तन उसके वास्तविक आचरण और कार्यों में प्रकट होना चाहिए।
(चैतन्य-चरितामृत**,** आदि **8.25,** तात्पर्य**)**

5. नियमाक्षमा **(**प्रतिस्पर्धा**)**

बहुत अधिक व्रत अथवा संकल्प लेना

- तब भक्त संकल्प करता है—
    - “आज से मैं जप के इतने चक्र करूँगा और इतने दण्डवत प्रणाम करूँगा।
    - मैं भक्तों की सेवा भी करूँगा।
    - मैं भगवान के अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर बात नहीं करूँगा और उन लोगों की सारी संगति छोड़ दूँगा जो भौतिक विषयों पर चर्चा करते हैं।”
- यद्यपि वह प्रतिदिन ऐसे संकल्प करता है, फिर भी वह हमेशा उन्हें पूरा नहीं कर पाता।
- इसे नियमाक्षमा, अर्थात नियमों का पालन करने में असमर्थता, कहा जाता है।
- विषय-संगर भौतिक भोग को त्याग न कर पाने की असमर्थता है, जबकि नियमाक्षमा अपनी भक्ति-सेवा को उन्नत न कर पाने की असमर्थता है।

6. तरंग-रंगिणी

- अंततः यह सर्वविदित है कि भक्ति का स्वभाव ही आकर्षक है, इसलिए सभी प्रकार के लोग उस भक्त की ओर आकर्षित होने लगते हैं, जो भक्ति का आश्रय है।
- और जैसा कि पुरानी कहावत है—“लोगों के आकर्षित होने से व्यक्ति समृद्ध हो जाता है।”
- भक्ति भौतिक लाभ, पूजा और पद-प्रतिष्ठा के अनेक अवसर उत्पन्न करती है — लाभ**,** पूजा**,** प्रतिष्ठा।
- ये भक्ति-लता के चारों ओर उगने वाली खरपतवार के समान हैं।
- इन खरपतवार-सदृश सुविधाओं के बीच गतिविधियाँ करना अथवा उनमें अपने सुख की खोज करना (रंग), जो भक्ति के महासागर में केवल छोटी-छोटी तरंगें (तरंग) हैं, तरंग-रंगिणी कहलाता है — अर्थात भौतिक सुविधाओं में आनंद लेना।



श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी अपने मनः-शिक्षा में लिखते हैं—

प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपचरमणी मे हृदि नटेत्
कथं साधु-प्रेमा स्पृशति शुचिर् एतन् ननु मनः
सदा त्वं सेवस्व प्रभु-दयित-सामन्तम् अतुलं
यथा तां निष्कास्य त्वरितम् इह तं वेशयति सः

“हे मन! यश और प्रतिष्ठा की इच्छा के रूप में एक निर्लज्ज, नीच कुल की, कुत्ते का मांस खाने वाली वेश्या मेरे हृदय में खुलेआम नृत्य कर रही है। ऐसी अवस्था में कृष्ण के प्रति शुद्ध प्रेम मेरे हृदय में स्थान कैसे पा सकता है? इसलिए सदैव कृष्ण के उन भक्तों की सेवा करो, जो उनके प्रिय और अतुलनीय सेनापति हैं, जिससे वे इस वेश्या को बाहर निकाल दें और मेरे हृदय में शुद्ध प्रेम को प्रतिष्ठित कर दें।”
(श्लोक 7)

श्री श्री शिक्षाष्टकम् — श्लोक 4

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

हे सर्वशक्तिमान प्रभु! मुझे धन-संपत्ति एकत्र करने की कोई इच्छा नहीं है, न ही मैं सुन्दर स्त्रियों के भोग की इच्छा करता हूँ, और न ही मुझे अनेक अनुयायियों की कामना है। मेरी केवल यही अभिलाषा है कि जन्म-जन्मांतर तक मुझे आपकी अहैतुकी भक्ति-सेवा प्राप्त होती रहे।

अपने आध्यात्मिक जीवन के उपर्युक्त 6 चरणों के संबंध में आपके सामने आने वाली आदतों/चुनौतियों को लिखें:

Stages	समस्याएँ	समाधान
उत्साहमयी		
घाना-तरला		
व्यूढ-विकल्प		
विषय युद्ध		
नियमक्षमा		
तरंग रंगिनी		



इन अवस्थाओं को पार करने का एकमात्र उपाय भक्तों की संगति है

हे प्रिय उद्धव! मेरे शुद्ध भक्तों की संगति करने से मनुष्य भौतिक इन्द्रिय-तृप्ति के समस्त विषयों के प्रति अपनी आसक्ति का नाश कर सकता है। ऐसी पवित्र करने वाली भक्त-संगति मुझे मेरे भक्त के वश में कर देती

है।
(श्रीमद्भागवतम् 11.2.2)

of My devotee. (Śrīmad-Bhāgavatam, 11.2.2)

CB verse 2.23.76:

`हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'" ॥ ৭৬ ॥

`हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'" ॥ ७६ ॥

**`hare kṛṣṇa hare kṛṣṇa kṛṣṇa kṛṣṇa hare hare
hare rāma hare rāma rāma rāma hare hare'" ॥ 76 ॥**

CB verse 2.23.77:
প্রভু বলে,—"কহিলাঙ এই মহা-মন্ত্র
ইহা জপ' গিয়া সবে করিয়া নির্বন্ধ ॥ ৭৭ ॥

প্রভু বলে,—"কহিলাङ এइ মহা-মন্ত্র
ইহা জপ' গিয়া সবে করিয়া নির্বন্ধ ॥ ৭৭ ॥

**prabhu bale,—"kahilāṅa ei mahā-mantra
ihā japa' giyā sabe kariyā nirbandha ॥ 77 ॥**

CB verse 2.23.78:
ইহা হৈতে সর্ব-সিদ্ধি হৈবে সবার
সর্ব-ক্ষণ বল' ইথে বিধি নাহি আর ॥ ৭৮ ॥

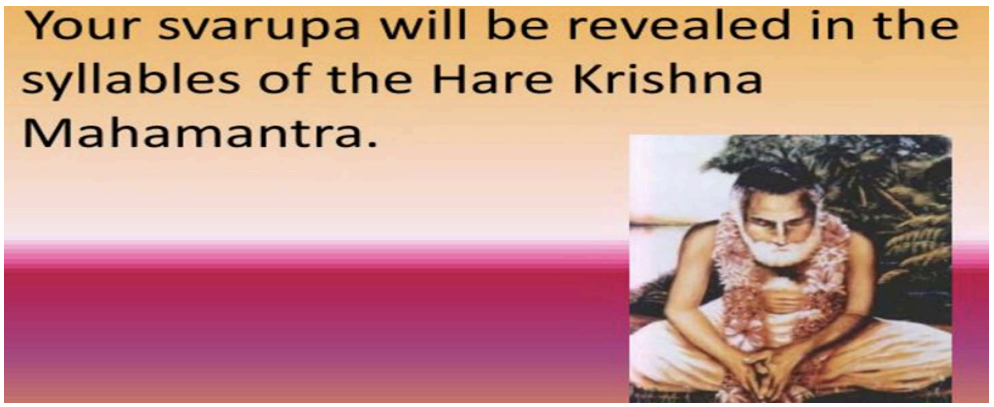
ইহা হৈতে সর্ব-সিদ্ধি হৈবে সবার
সর্ব-ক্ষণ বল' ইথে বিধি নাহি আর ॥ ৭৮ ॥

**ihā haite sarva-siddhi haibe sabāra
sarva-kṣaṇa bala' ithe vidhi nāhi āra ॥ 78 ॥**

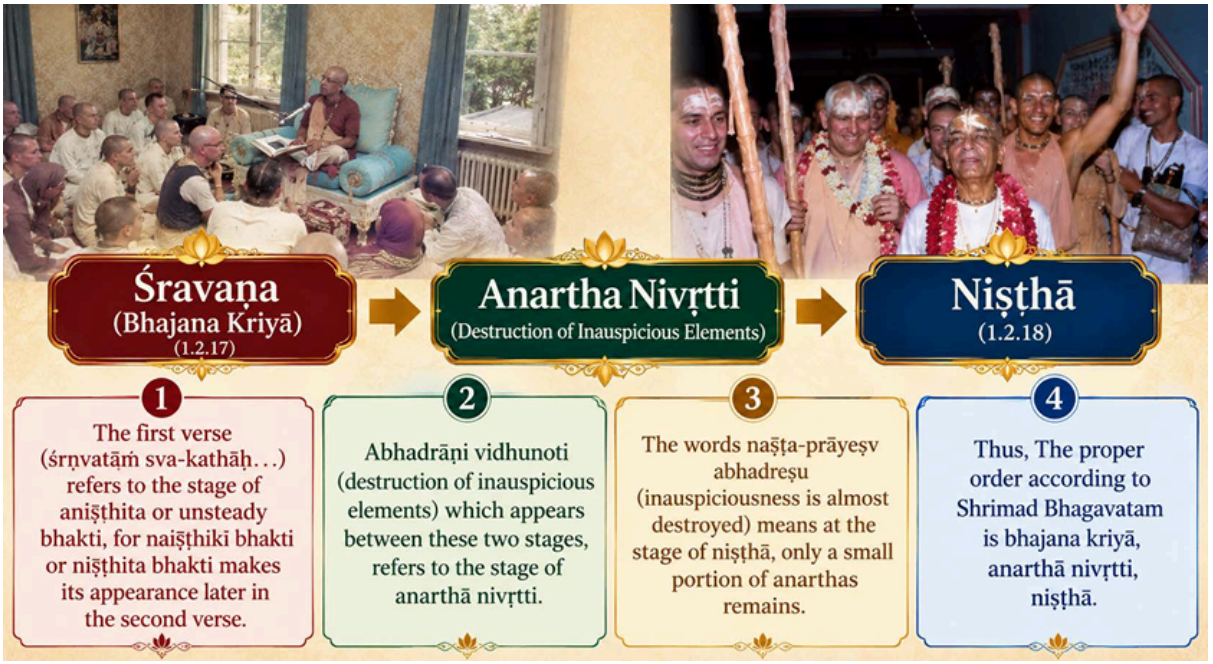
CB verse 2.23.79:
দশ-পাঁচ মিলি' নিজ দ্বারেতে বসিয়া
কীর্তন করহ সবে হাতে তালি দিয়া ॥ ৭৯ ॥

দশ-পাञ্চ মিলি' নিজ দ্বারেতে বসিয়া
কীর্তন করহ সবে হাতে তালি দিয়া ॥ ৭৯ ॥

**daśa-pāñca mili' nija dvārete vasiyā
kīrtana karaha sabe hāte tāli diyā ॥ 79 ॥**



अनर्थ-निवृत्ति



अनर्थ का अर्थ है हृदय में स्थित अवांछित इच्छाएँ, और निवृत्ति का अर्थ है उनका समाप्त होना।

“इसमें कोई संदेह नहीं कि वृन्दावन के वैष्णवों से आपने अष्टकालिय-लीला-स्मरण के विषय में जो सीखा है, वह प्रशंसनीय है; किन्तु जब तक व्यक्ति अनर्थों से भरा हुआ है, तब तक इस विषय को वास्तव में समझा नहीं जा सकता। इन विषयों की अनुभूति योग्य व्यक्ति को हरि के पवित्र नामों का जप करते हुए होती है। जब सभी अनर्थ, अर्थात अवांछित वस्तुएँ, नष्ट हो जाती हैं, तब जीव की स्वाभाविक स्थिति जागृत होती है। जब जीव की स्वाभाविक स्थिति पुनः प्रकट होती है, तब आत्मा की शाश्वत अनुभूति स्वतः प्राप्त हो जाती है। इस विषय में मुझे और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। भजन-पथ पर जितनी उन्नति होती है, उसी के अनुसार ये विषय निष्कपट और सेवा-भाव से युक्त हृदय में स्वाभाविक रूप से प्रकट होने लगते हैं।”

(श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, पत्रामृत, 2.36)

इस अवस्था में भक्त यह सीखता है कि एक भक्त की भाँति किस प्रकार सोचना चाहिए। यहाँ उसकी भजन-क्रिया स्थिर हो जाती है और इसके बाद वह भीतर से और अधिक विकसित होने लगती है।



चार प्रकार के अनर्थ



(1) दुष्कृतोत्थ — पापकर्मों से उत्पन्न अनर्थ

पूर्व में किए गए पापकर्मों (दुष्कृतोत्थ) से उत्पन्न अनर्थ उन पाँच प्रकार के क्लेशों के अंतर्गत आते हैं जिनका पहले उल्लेख किया गया है—

अविद्या, मिथ्या अहंकार, आसक्ति, द्वेष और मृत्यु का भय।

(2) सुकृतोत्थ — पुण्यकर्मों से उत्पन्न अनर्थ

- पुण्यकर्मों (सुकृतोत्थ) से उत्पन्न अनर्थ वे आसक्तियाँ हैं जो पुण्यकर्मों से प्राप्त होने वाले भोगों के प्रति उत्पन्न होती हैं।
- कुछ ऋषि पुण्यकर्मों से उत्पन्न अनर्थों को भी ऊपर बताए गए क्लेशों की श्रेणी में सम्मिलित करते हैं।
- भक्ति से किसी पुण्यफल को प्राप्त करने की इच्छा।
- देवतागण नारायण की पूजा करते हैं ताकि वे असुरों से उनकी रक्षा करें।

(3) अपराधोत्थ — अपराधों से उत्पन्न अनर्थ

- अपराधों से उत्पन्न अनर्थों का तात्पर्य नामापराधों से उत्पन्न अनर्थों से है, सेवापराधों से नहीं।
- सेवापराध — पवित्र नाम के द्वारा उनसे मुक्त हुआ जा सकता है।
- नामापराध — उनसे मुक्त होने का कोई अन्य मार्ग नहीं है।
- व्यक्ति को असावधान नहीं होना चाहिए और यह सोचकर सेवापराध नहीं करना चाहिए कि पवित्र नाम के जप द्वारा सेवापराध के सभी प्रभावों से वह सुरक्षित हो जाएगा। ऐसा करने पर सेवापराध नामापराध बन जाता है, जो उसकी आध्यात्मिक प्रगति में बाधक अनर्थ बनता है।
- शास्त्रों में जानबूझकर सेवापराध करने वाले व्यक्ति को दो पैरों वाला पशु कहा गया है—

हरेरप्यपराधान् यः कुर्याद् द्विपद-पांसनः।

- नामापराधों में से सातवाँ अपराध अत्यन्त गंभीर है — इससे पवित्र नाम के प्रति किसी भी प्रकार की रुचि विकसित करने का अवसर नष्ट हो जाता है।
- इसी प्रकार साधु-निन्दा भी अत्यन्त गंभीर और घातक है।
- आचार्यों ने यह समझाया है कि सामान्यतः सेवापराधों का प्रभाव नहीं रहता, क्योंकि पवित्र नाम के जप, उन स्तोत्रों के पाठ जिनमें सेवापराधों के प्रभाव को नष्ट करने की शक्ति है, तथा निरन्तर सेवा द्वारा उनका प्रभाव समाप्त हो जाता है।
- इन कार्यों में निरन्तर लगे रहने से सेवापराध का सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रभाव भी प्रारम्भ में ही नष्ट हो जाता है।
- फिर भी व्यक्ति को असावधान नहीं होना चाहिए और यह सोचकर सेवापराध नहीं करना चाहिए कि ऊपर बताए गए उपायों से वह उसके प्रभाव से सुरक्षित रहेगा।
- ऐसा करने पर यह सेवापराध नामापराध रूपी अनर्थ बन जाता है, जो उसकी आध्यात्मिक प्रगति में बाधा उत्पन्न करेगा।

नामापराध:

1. वह पवित्र नाम की शक्ति के बल पर पाप करने वाले नामापराध का दोषी होता है।

नाम्नो बलाद् यस्य हि पाप-बुद्धिः।

2. नामापराध पद में प्रयुक्त नाम शब्द उन सभी भक्ति-अंगों का प्रतिनिधित्व करता है जो पाप और अपराध का नाश करते हैं, जिनमें पवित्र नाम प्रमुख अंग है।
3. यहाँ तक कि धर्मशास्त्र के अनुसार भी, यह जानते हुए पाप नहीं करना चाहिए कि प्रायश्चित्त द्वारा उसके प्रभाव से मुक्त हुआ जा सकता है।
4. ऐसा करने पर पाप का प्रभाव नष्ट नहीं होता, बल्कि और अधिक बढ़ जाता है।

अपराध पापों की श्रेणी में नहीं आते

श्लोक – 2

दशमोऽयं जप-मात्रेण सिद्धिदः

केवल इस दस-अक्षरीय मंत्र का जप करने मात्र से सिद्धि प्राप्त होती है।

1. यदि भक्ति के कुछ अंगों की उपेक्षा की जाए अथवा उन्हें पूर्ण न किया जाए, तो क्या उससे नामापराध उत्पन्न नहीं होता?
2. कभी नहीं! पवित्र नाम की शक्ति के बल पर पाप करने का अर्थ है जानबूझकर पाप करना, यह सोचकर कि भक्ति की शक्ति उसके दुष्प्रभाव को नष्ट कर देगी।
3. पाप उन कर्मों को कहा जाता है जिन्हें शास्त्रों ने निषिद्ध बताया है और जिनके लिए प्रायश्चित्त आवश्यक है।
4. कर्ममार्ग में विधि को पूर्णतः ठीक ढंग से न करने की निन्दा की जाती है, किन्तु भक्ति-पथ में शास्त्र सभी अंगों को पूर्ण न कर पाने की कभी निन्दा नहीं करते।

श्रीमद्भागवतम् **11.2.34**

ये वै भगवता प्रोक्ता
उपाया ह्यात्मलब्धये।
अञ्जः पुंसामविदुषां
विद्धि भागवतान् हि तान्॥

अज्ञानी जीव भी अत्यन्त सरलता से परम भगवान को जान सकते हैं, यदि वे स्वयं परम भगवान द्वारा बताए गए उपायों को अपनाएँ।

भगवान द्वारा बताए गए इस मार्ग को भागवत-धर्म, अर्थात भगवान की भक्ति-सेवा, के रूप में जाना जाता है।

श्रीमद्भागवतम् **11.2.35**

यानास्थाय नरो राजन्
न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन् निमील्य वा नेत्रे
न स्खलेन्न पतेदिह॥

हे राजन्! जो व्यक्ति भगवान की इस भक्ति-प्रक्रिया को स्वीकार करता है, वह इस संसार में अपने मार्ग पर कभी भूल नहीं करता।

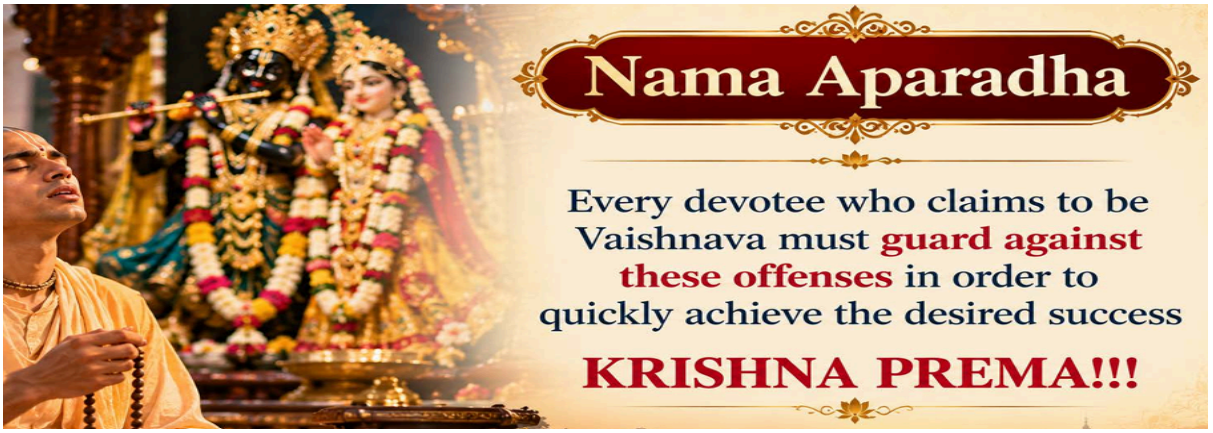
वह आँखें बंद करके दौड़ते हुए भी कभी ठोकर नहीं खाता और न गिरता है।

श्लोक के अर्थ को समझना

1. यहाँ निमील्य अर्थात आँखें बंद करना — इसका अर्थ है कि व्यक्ति के पास आँखें हैं, वह अन्धा नहीं है, किन्तु उसने उन्हें बंद कर रखा है।
2. धावन् अर्थात दौड़ना — इसका अर्थ है तीव्र गति से आगे बढ़ना, जिसमें व्यक्ति सामान्य ढंग से न चलकर अपने पाँव असामान्य रूप से आगे रखता है।
3. ये इन शब्दों के प्रत्यक्ष अर्थ हैं।
4. यह श्लोक उस व्यक्ति के विषय में है जिसने भक्ति का आश्रय लिया है और भक्ति के मुख्य अंगों का अभ्यास कर रहा है। इसका अर्थ है कि ऐसा व्यक्ति न तो अपने फल से वंचित होता है और न ही अपने लक्ष्य से, भले ही वह भक्ति के सभी अंगों को जानते हुए भी कुछ गौण अंगों का पालन ऐसे न करे मानो उन्हें जानता ही न हो।

5. यह श्लोक उस व्यक्ति का वर्णन करता है जिसने भगवान द्वारा बताए गए भक्ति-पथ का निष्कपट भाव से आश्रय लिया है।
   (ऐसी अवस्था में जानबूझकर सेवापराध करने का प्रश्न ही नहीं उठता।)
6. भक्त बत्तीस प्रकार के सेवापराध जानबूझकर नहीं करता, जैसे पालकी पर बैठकर या जूते पहनकर मंदिर में प्रवेश करना आदि।
7. क्योंकि शास्त्रों में जानबूझकर सेवापराध करने वाले व्यक्ति को दो पैरों वाला पशु कहा गया है—

हरेरप्यपराधान् यः कुर्याद् द्विपद-पांसनः।



1. भगवान्नाम के प्रचार में सम्पूर्ण जीवन समर्पित करने वाले महाभागवतों की निन्दा करना।
2. शिव, ब्रह्मा आदि देवों के नाम को भगवान्नाम के समान अथवा उससे स्वतन्त्र समझना।
3. गुरु की अवज्ञा करना अथवा उन्हें साधारण मनुष्य समझना।
4. वैदिक शास्त्रों अथवा प्रमाणों का खण्डन करना।
5. हरे कृष्ण महामन्त्र के जप की महिमा को काल्पनिक समझना।
6. पवित्र भगवन्नाम में अर्थवाद का आरोप करना।
7. नाम के बल पर पाप करना।
8. हरे कृष्ण महामन्त्र के जप को वेदों में वर्णित एक शुभ सकाम कर्म (कर्मकाण्ड) के समान समझना।
9. अश्रद्धालु व्यक्ति को हरिनाम की महिमा का उपदेश करना।
10. भगवन्नाम के जप में पूर्ण विश्वास न होना और इसकी इतनी अगाध महिमा श्रवण करने पर भी भौतिक आसक्ति बनाये रखना।
    भगवन्नाम का जप करते समय पूर्ण रूप से सावधान न रहना भी अपराध है।

1. साधु-निन्दा

भगवान के भक्तों की आलोचना — वैष्णव-निन्दा अत्यन्त घातक है

साधु-निन्दा, अर्थात वैष्णवों की आलोचना, पवित्र नाम के प्रति किए जाने वाले दस अपराधों में प्रथम अपराध है।

निन्दा शब्द का अर्थ है वैरभाव या द्वेष।

यदि किसी प्रकार यह अपराध हो जाए, तो व्यक्ति को पश्चात्ताप करना चाहिए—
“ओह! मैं कितना नीच व्यक्ति हूँ, मैंने एक साधु के प्रति अपराध कर दिया है!”

जो व्यक्ति अग्नि से जल जाता है, वह अग्नि में ही राहत खोजता है।

kṛṣṇau sāmyati taptaḥ
kṛṣṇunā evāyam

जो व्यक्ति अग्नि से जल जाता है, वह अग्नि में ही राहत खोजता है।

साधु-निन्दा के अपराध को कैसे निष्फल करें

1. इस तर्क के अनुसार, व्यक्ति को पश्चात्ताप करना चाहिए, वैष्णव के समक्ष जाने का संकल्प करना चाहिए, उनके चरणों में गिरना चाहिए, तथा प्रणाम, स्तुति और सम्मान अर्पित करके उन्हें संतुष्ट करना चाहिए।
2. यदि वैष्णव संतुष्ट न हों, तो व्यक्ति को अनेक दिनों तक उनकी इच्छा के अनुसार अनुकूल सेवा करनी चाहिए।
3. कभी-कभी अपराध इतना गंभीर होता है कि वैष्णव का क्रोध शांत नहीं होता।

अपराध का प्रभाव और विनम्रता की आवश्यकता

1. अत्यन्त पश्चात्ताप में, स्वयं को अत्यन्त दुर्भाग्यशाली मानते हुए और यह सोचते हुए कि अपने अपराध के कारण वह लाखों वर्षों तक नरक में बँधा रहेगा, उसे सब कुछ त्यागकर निरन्तर नाम-संकीर्तन का पूर्ण आश्रय लेना चाहिए।
2. नाम-कीर्तन की दिव्य शक्ति से निश्चित रूप से समय आने पर वह व्यक्ति अपने अपराध से मुक्त हो जाएगा।
3. किन्तु उसे यह कहकर स्वयं को उचित सिद्ध नहीं करना चाहिए कि शास्त्र में कहा गया है—

nāmāparādha-yuktānāṁ nāmāny eva haranty agham

“केवल पवित्र नाम ही अपराधी को मुक्त करने के लिए पर्याप्त है।”

4. तब जिस वैष्णव के प्रति उसने अपराध किया है, उसके समक्ष बार-बार प्रणाम और सेवा करके स्वयं को विनम्र करने की क्या आवश्यकता है?
5. इस प्रकार की मानसिकता उसे और अधिक अपराध का दोषी बना देती है।

साधु-निन्दा भक्तों में भेदभाव नहीं करती

1. व्यक्ति को यह भी नहीं सोचना चाहिए कि साधु-निन्दा का अपराध विभिन्न प्रकार के वैष्णवों में भेद करता है।
2. यह केवल उसी व्यक्ति के लिए नहीं है जो शास्त्रों में वर्णित सभी गुणों से पूर्ण और सिद्ध रूप से युक्त हो, जैसे दयालु होना, किसी को हानि न पहुँचाना और सभी जीवों को क्षमा करना—

kṛpālur akṛta-drohas titikṣuḥ sarva-dehinām

वह दयालु है, किसी के प्रति द्वेष नहीं रखता, सहनशील है और सभी जीवों को क्षमा करता है।

(श्रीमद्भागवतम् 11.11.29)

भक्त के दोष दिखाकर अपने अपराध को उचित न ठहराएँ

1. कोई व्यक्ति भक्त में किसी दोष को दिखाकर अपने अपराध को कम नहीं कर सकता।

2. इसके उत्तर में शास्त्र कहते हैं—

sarvācāra-vivarjitaḥ śaṭha-dhiyo vrātyā
jagad-vañcakaḥ

यदि कोई व्यक्ति बहुत बुरे चरित्र वाला हो, धोखेबाज हो, उचित आचरण से रहित हो, द्वेषपूर्ण हो, संस्कारों से रहित हो और सांसारिक इच्छाओं से भरा हो, फिर भी यदि वह भगवान की शरण ग्रहण कर लेता है, तो उसे साधु मानना चाहिए। फिर एक शुद्ध वैष्णव के विषय में क्या कहना।

श्रीमद्भागवतम् **11.11.29**

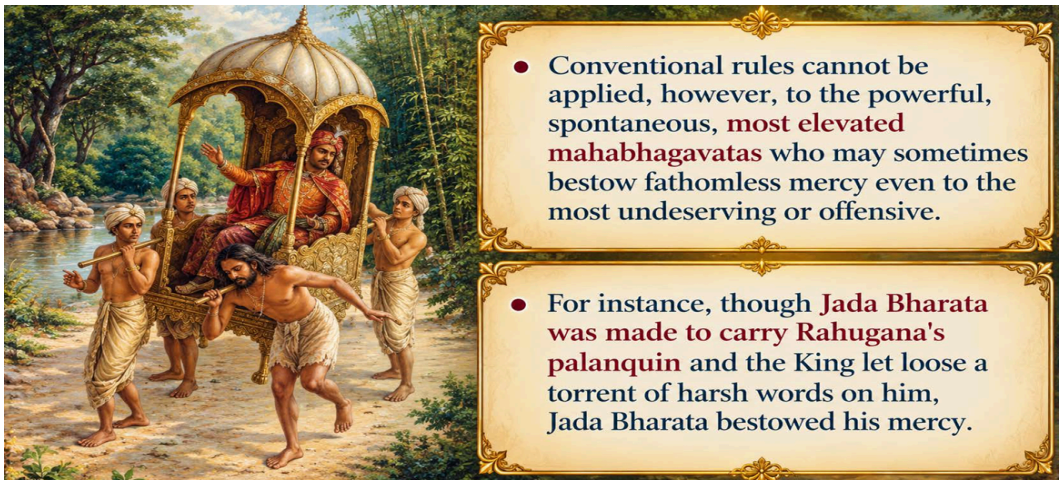
वैष्णव के प्रति अपराध का प्रभाव

1. कभी-कभी किसी वैष्णव के प्रति गंभीर अपराध किया जाता है, किन्तु अपने उच्च स्वभाव के कारण वैष्णव क्रोधित नहीं होते।
2. फिर भी अपराधी को उस भक्त के चरणों में गिरकर स्वयं को शुद्ध करने के लिए उन्हें प्रसन्न करने के उपाय खोजने चाहिए।
3. यद्यपि वैष्णव अपराधों को क्षमा कर सकते हैं, किन्तु उनके चरणों की धूल अपराध को सहन नहीं करती और दोषी व्यक्ति को उस अपराध का फल प्रदान करती है।

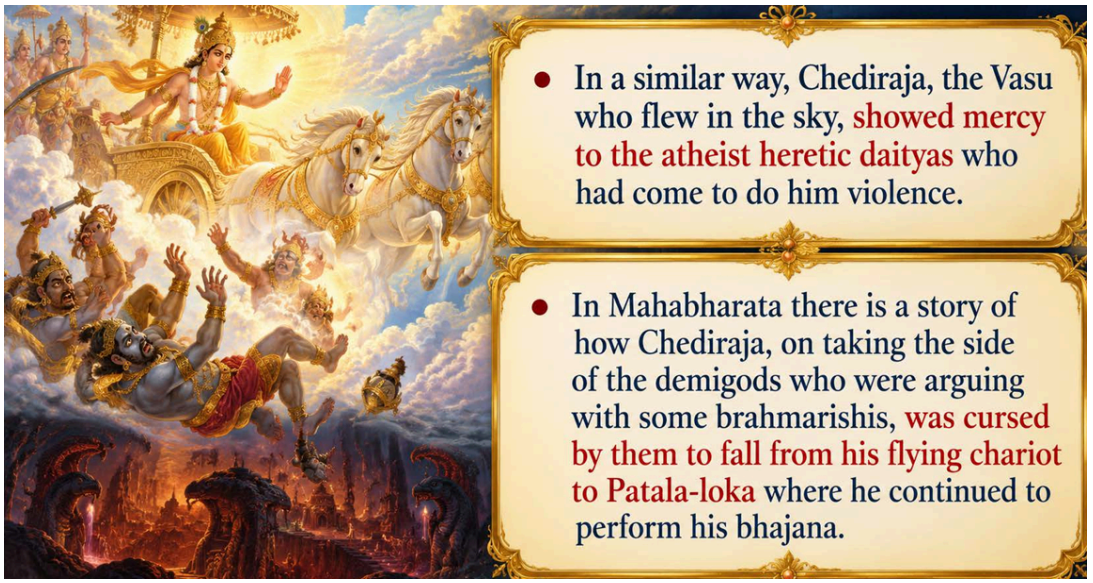
श्रीमद्भागवतम् **4.4.13**
नाश्चर्यमेतद् यदसत्सु सर्वदा
महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु।
सेर्ष्यं महापुरुषपादपांसुभिर्
निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम्॥

जिन लोगों ने इस क्षणभंगुर भौतिक शरीर को ही आत्मा मान लिया है, उनका महान आत्माओं की सदैव निन्दा करना आश्चर्य की बात नहीं है। भौतिकवादी व्यक्तियों की ऐसी ईर्ष्या उनके लिए इस अर्थ में अच्छी है कि इसी के द्वारा उनका पतन होता है। महान व्यक्तियों के चरणों की धूल के प्रभाव से उनका तेज नष्ट हो जाता है।

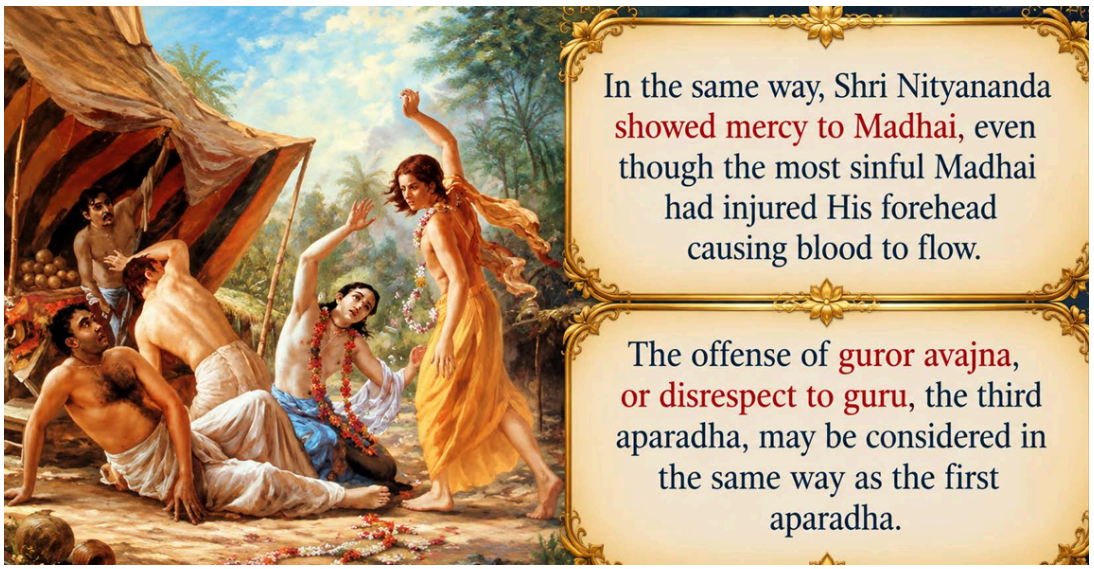




- Conventional rules cannot be applied, however, to the powerful, spontaneous, most elevated mahabhagavatas who may sometimes bestow fathomless mercy even to the most undeserving or offensive.
- For instance, though Jada Bharata was made to carry Rahugana's palanquin and the King let loose a torrent of harsh words on him, Jada Bharata bestowed his mercy.



- In a similar way, Chediraja, the Vasu who flew in the sky, showed mercy to the atheist heretic daityas who had come to do him violence.
- In Mahabharata there is a story of how Chediraja, on taking the side of the demigods who were arguing with some brahmarishis, was cursed by them to fall from his flying chariot to Patala-loka where he continued to perform his bhajana.

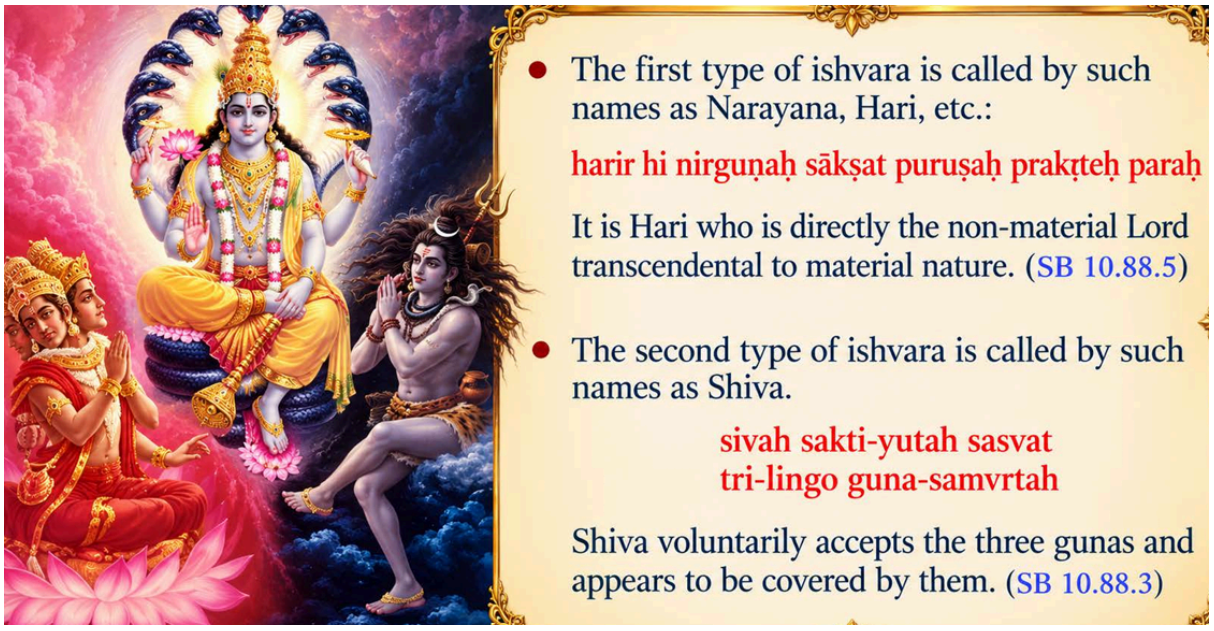


द्वितीय अपराध

• चेतन तत्त्व (चैतन्य) दो प्रकार का है—स्वतंत्र और परतंत्र।

• स्वतंत्र चेतन तत्त्व सर्वव्यापी भगवान (ईश्वर) हैं, और परतंत्र चेतन जीवात्माएँ हैं, जो भगवान की अंशरूप शक्तियाँ हैं तथा केवल अपने-अपने शरीर में व्याप्त रहती हैं।

• ईश्वर-चैतन्य भी दो प्रकार से प्रकट होता है—एक, जो माया के स्पर्श से सर्वथा अछूता रहता है; और दूसरा, जिसमें भगवान अपनी दिव्य लीलाओं के लिए माया का स्पर्श स्वीकार करते हैं।



यद्यपि भगवान शिव बाह्य रूप से गुणों से आवृत प्रतीत होते हैं, फिर भी उन्हें जीव की श्रेणी में नहीं समझना चाहिए, क्योंकि ब्रह्म-संहिता में कहा गया है—

क्षीरं यथा दधि विकार-विशेष-योगात्
सञ्जायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः।

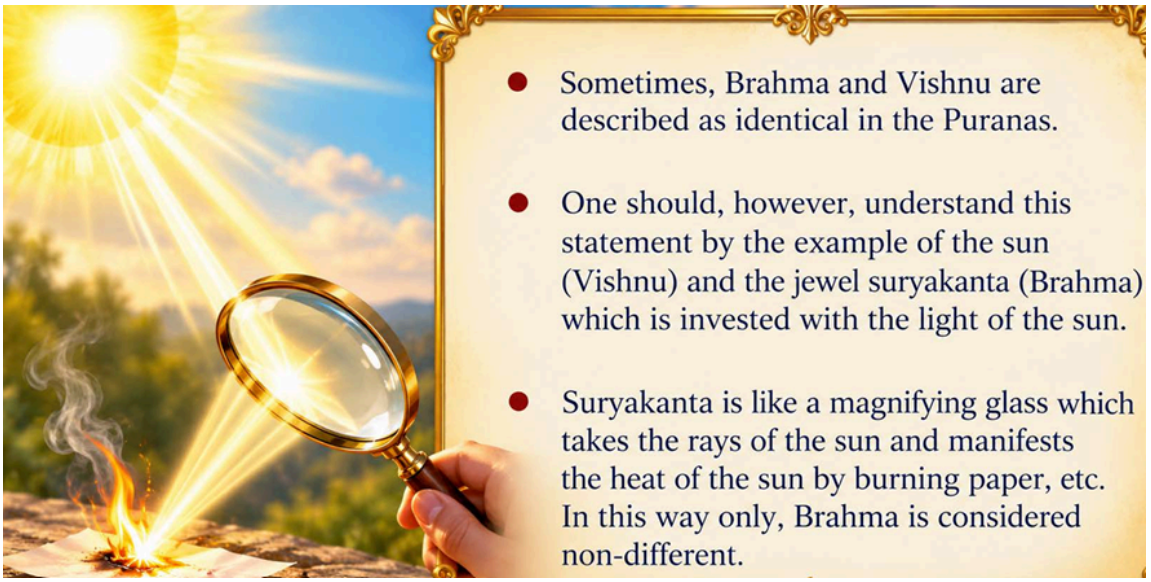
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद्
गोविन्दमादि-पुरुषं तमहं भजामि॥

जिस प्रकार दही, दूध का ही एक विशेष रूपांतरण है, उसी प्रकार भगवान शिव भी भगवान के एक विशेष रूपांतरण हैं।
(ब्रह्म-संहिता 5.45)

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्
युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते।
स्थित्यादये हरि-विरिञ्चि-हरेति संज्ञाः
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्व-तनोर्नृणां स्युः॥

एक ही परम पुरुष, प्रकृति के सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणों को स्वीकार करके इस जगत की सृष्टि, पालन और संहार के लिए क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा और शिव नाम धारण करते हैं। भक्तों के लिए सर्वोत्तम कल्याण भगवान विष्णु से प्राप्त होता है, जिनका स्वरूप शुद्ध-सत्त्वमय है।
(श्रीमद्भागवतम् 1.2.23)

इस श्लोक से सामान्यतः यह भी समझा जाता है कि ब्रह्माजी को भी ईश्वर अथवा प्रभु के रूप में माना जा सकता है। किन्तु ब्रह्माजी की ईश्वर के रूप में स्थिति को इस प्रकार समझना चाहिए कि परमेश्वर ने एक जीव में अपनी विशेष शक्ति का आवेश किया है। इसे ईश्वर-आवेश कहा जाता है।



कुछ महाकल्पों में भगवान शिव भी ब्रह्माजी के समान ऐसे विशेष जीव के रूप में कार्य करते हैं, जिन्हें भगवान द्वारा विशेष शक्ति प्रदान की जाती है—

क्वचिज्जीव-विशेषत्वं
हरस्योक्तं विधेरिव॥

जिस प्रकार कभी ब्रह्माजी के पद पर एक विशेष जीव को नियुक्त किया जाता है, उसी प्रकार कभी-कभी एक विशेष जीव भगवान की शक्ति से आविष्ट होकर शिव के पद को ग्रहण करता है।

• इसीलिए कुछ शास्त्रीय कथनों में भगवान शिव को ब्रह्माजी के साथ एक ही श्रेणी में उल्लेख किया गया है, जैसे—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्म-रुद्रादि-दैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥

जो व्यक्ति भगवान नारायण को ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवताओं के समान समझता है, वह निश्चित रूप से पाषण्डी कहलाता है।
(हरि-भक्ति-विलास 1.73)

• जिन्होंने इस तत्त्व का भली-भाँति अध्ययन नहीं किया है, वे कभी कहते हैं कि विष्णु ही भगवान हैं, शिव नहीं; अथवा शिव ही भगवान हैं, विष्णु नहीं।

• कोई ऐसा सोच सकता है—"मैं भगवान विष्णु का भक्त हूँ, इसलिए मैं भगवान शिव का आदर नहीं करूँगा," अथवा इसके विपरीत भी सोच सकता है।

• जो लोग जान-बूझकर इस प्रकार के विवादों में उलझते हैं, वे भी नाम-अपराध करते हैं।

• यदि ऐसे अपराधी को इस विषय का पूर्ण तत्त्वज्ञान रखने वाले किसी ज्ञानी भक्त की कृपा से उचित समझ प्राप्त हो जाए, तो वह यह समझ सकता है कि भगवान शिव और भगवान विष्णु किस प्रकार अभिन्न हैं।

• इस तत्त्व का यथार्थ बोध होने पर तथा नाम-कीर्तन करने से व्यक्ति अपने इस अपराध को दूर कर सकता है।

4. श्रुति-शास्त्र निन्दा — चतुर्थ अपराध

• श्रुति-शास्त्र निन्दा चौथा नाम-अपराध है। इसका अर्थ है श्रुति-शास्त्रों अर्थात् वेदों का अनादर करना और यह सोचना कि उनमें भक्ति का वर्णन नहीं है तथा केवल सांसारिक प्रवृत्ति वाले लोग ही उनकी महिमा करते हैं।

• यदि कोई व्यक्ति यह अपराध करता है, तो जब सौभाग्यवश उसे किसी तत्त्वज्ञ भक्त से इस विषय को ठीक प्रकार से समझने का अवसर प्राप्त होता है, तब वह इस अपराध से मुक्त हो सकता है।

• श्रुतियाँ अत्यन्त कृपापूर्वक उन अत्यधिक अयोग्य व्यक्तियों की भी सहायता करती हैं, जो वैदिक विधि-विधानों का पालन नहीं करते और भौतिक इच्छाओं से अन्धे हो चुके हैं, ताकि वे धीरे-धीरे भक्ति के मार्ग पर आ सकें।

• चौथे अपराध का निराकरण उसी मुख से किया जाना चाहिए, जिस मुख से शास्त्रों की निन्दा की गई थी—जैसे उन श्रुतियों की, जिनमें कर्म और ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है।

• व्यक्ति को उन्हीं शास्त्रों की महिमा करनी चाहिए तथा उन शास्त्रों का अनुसरण करने वाले साधकों—जैसे कर्म और ज्ञान का आचरण करने वालों—का भी सम्मान करना चाहिए और साथ ही ऊँचे स्वर से पवित्र हरिनाम का कीर्तन करना चाहिए।

• इसी प्रकार शेष छह अपराधों के होने और उनके निराकरण की प्रक्रिया को भी समझना चाहिए।

दस नाम-अपराधों की चर्चा करते हुए पद्म पुराण का प्रमाण देते हुए हरि-भक्ति-विलास में कहा गया है—

नाम्नो बलाद् यस्य हि पाप-बुद्धिर्
न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः॥

जो व्यक्ति पवित्र हरिनाम के बल पर पाप करने की बुद्धि रखता है, वह योग आदि के नियमों का हजारों वर्षों तक पालन करने पर भी शुद्ध नहीं हो सकता।
(हरि-भक्ति-विलास 11.284)

• इस श्लोक में "यमैः" शब्द योग-शास्त्र में बताए गए यम, नियम आदि विधि-विधानों की ओर संकेत करता है।

• दूसरे शब्दों में, भले ही नाम-अपराधी मृत्यु के देवता यमराज के दण्ड से बच जाए, किन्तु अन्य शुद्धिकरण की प्रक्रियाएँ—अर्थात् यम आदि साधन—उसे उसके अनर्थों से मुक्त नहीं कर सकतीं।

अपराध	संभावित समाधान
1) उन भक्तों की निंदा करना जिन्होंने भगवान के पवित्र नाम के प्रचार के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है।	
2) भगवान शिव या भगवान ब्रह्मा जैसे देवताओं के नामों को भगवान विष्णु के नाम के बराबर या स्वतंत्र मानना।	
3) आध्यात्मिक गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना।	
4) वैदिक संस्करण के अनुसरण में वैदिक ग्रंथों या ग्रंथों की निंदा करना।	
5) हरे कृष्ण जप की महिमा को कल्पना मानना.	
6) भगवान के पवित्र नाम की कुछ व्याख्याएँ देना।	
7) पवित्र नाम के बल पर पाप कर्म करना।	
8) हरे कृष्ण के जाप को शुभ कर्मकांडों में से एक मानना, जिसे वेदों में फलदायी गतिविधियों (कर्म कांड) के रूप में प्रस्तुत किया गया है।	
9) किसी अविश्वासी व्यक्ति को पवित्र नाम की महिमा का उपदेश देना	
10) इस विषय में इतने सारे निर्देशों को समझने के बाद भी पवित्र नाम के जप में पूर्ण विश्वास न रखना और भौतिक आसक्तियाँ बनाए रखना।	
जप करते समय असावधानी बरतना भी अपराध है। प्रत्येक भक्त जो वैष्णव होने का दावा करता है, उसे शीघ्र वांछित सफलता प्राप्त करने के लिए इन अपराधों से बचना चाहिए, कृष्ण प्रेमा!!!	

(4) भक्तिउत्था (भक्ति सेवा से आने वाले अनर्थ)

- जैसे ही मुख्य पौधे के साथ-साथ कई खरपतवार उगते हैं, भक्ति के साथ-साथ भौतिक धन और अन्य सुविधाओं की प्राप्ति, दूसरों द्वारा पूजा और सम्मान, आरामदायक स्थिति और प्रसिद्धि (लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा) दिखाई देती है।
- नाम और प्रसिद्धि, विशिष्टता, आराधना और लाभ की इच्छा
- त्रिनादपि सुनीचेना समाधान है

अनर्थों के निराकरण की अवस्थाएँ

इस प्रकार, भजन-क्रिया अर्थात् भक्ति के अंगों का अभ्यास प्रारम्भ करते ही अनर्थों का निराकरण आरम्भ हो जाता है, किन्तु प्रारम्भिक अवस्था में यह निराकरण अभी पूर्ण नहीं होता। इसे प्रसिद्ध न्याय द्वारा समझा जा सकता है—"नगर जल गया, वस्त्र फट गया।"

• दूसरे शब्दों में, जब हम सुनते हैं कि कोई नगर जल गया, तो यह समझा जा सकता है कि उसका कुछ भाग अभी भी शेष हो सकता है। उसी प्रकार यदि कोई वस्त्र फट गया हो, तो उसके टुकड़े अभी भी विद्यमान रहते हैं।

अनर्थ का उन्मूलन क्रमिक है, तत्काल नहीं

भक्ति सेवा इतनी शुद्ध और परिपूर्ण है कि एक बार शुरू करने के बाद, व्यक्ति को जबरन अंतिम सफलता तक खींच लिया जाता है। कभी-कभी कोई व्यक्ति अपनी सामान्य भौतिक व्यस्तताओं को त्याग देता है और भावना से बाहर आकर सर्वोच्च भगवान के चरण कमलों की शरण लेता है और इस प्रकार भक्ति सेवा का प्रारंभिक कार्यान्वयन शुरू करता है। यदि ऐसा अपरिपक्व भक्त गिर भी जाए तो उसकी कोई हानि नहीं होती। दूसरी ओर, उस व्यक्ति को क्या लाभ है जो अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार निर्धारित कर्तव्यों का पालन करता है लेकिन भक्ति नहीं करता है? (श्रील प्रभुपाद, उपदेशामृत)

ŚB 6.16.44
न हि भगवन्न अघातितम् इदं
त्वद्-दर्शनां नृणां अखिल-पाप-क्षयः
यन्-नम सक्रच च्रवनात्
पुक्कशोऽपि विमुच्यते संसारात्

"हे भगवान, आपके दर्शन से किसी के लिए सभी भौतिक कल्मष से तुरंत मुक्त होना असंभव नहीं है। आपको व्यक्तिगत रूप से देखने की बात तो दूर, केवल एक बार आपके प्रभु का पवित्र नाम सुनने मात्र से, चांडाल, निम्नतम वर्ग के लोग भी, सभी भौतिक संदूषण से मुक्त हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में, आपके दर्शन मात्र से कौन भौतिक कल्मष से मुक्त नहीं होगा?"

ये सब सच है. किसी को इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि पवित्र नाम में सभी मामलों में ऐसी अमूल्य शक्ति है।
हालाँकि, पवित्र नाम, अपने विरुद्ध किए गए अपराधों से नाखुश होने के कारण, अपराधी में अपनी पूरी शक्ति प्रकट नहीं करता है।
वास्तव में यही कारण है कि अपराधी में पापपूर्ण प्रवृत्तियाँ बनी रहती हैं।
फिर भी, मृत्यु के सेवकों के पास ऐसे व्यक्ति पर हमला करने की कोई शक्ति नहीं है (जैसा कि अजामिल के मामले में)।

- कोई यह तर्क दे सकता है कि मैंने कभी कोई अपराध नहीं किया है।
    - किसी को ऐसे बयान नहीं देने चाहिए.'
    - हालाँकि अपराध हाल ही में नहीं किया गया है, हो सकता है कि यह अतीत में किया गया हो, लेकिन उनके प्रभाव से कोई भी अपराध के अस्तित्व का अनुमान लगा सकता है।
    - अपराध का प्रभाव यह है कि नाम कीर्तन करने से व्यक्ति में प्रेम के कोई लक्षण प्रकट नहीं होंगे।

ŚB 2.3.24
तद् अश्म-सारं हृदयं बतेदम
यद् गृह्यमाणैर हरि-नाम-धेयैः
न विक्रियेतथा यदा विकारो
नेत्रे जलं गात्र-रूहेषु हर्षः

निश्चित रूप से वह हृदय स्टील का बना हुआ है, जो एकाग्रता के साथ भगवान के पवित्र नाम का जप करने के बावजूद नहीं बदलता है, जब परमानंद होता है, आंखों में आंसू भर आते हैं और रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

- जैसे एक पेड़ केवल उचित मौसम में ही फल देता है, पवित्र नाम, हालांकि एक अपराधहीन व्यक्ति से प्रसन्न होता है, लेकिन उचित समय पर ही उस पर अपनी दया प्रकट करेगा।
    - ❖ अजामिल ने अपने बेटे का नाम नारायण रखा और उस नाम को हर दिन कई बार बुलाया, जो कि निरापद तरीके से किया गया था।
    - ❖ फिर भी उसमें प्रेम के लक्षण प्रकट नहीं हुए, इसके अलावा वह एक वेश्या के साथ पापपूर्ण संबंध बनाने की ओर भी प्रवृत्त हो गया।
- युधिष्ठिर ने स्वयं परमेश्वर का सानिध्य प्राप्त कर लिया था और इस प्रकार वे निश्चित रूप से पिछले कर्मों के परिणामों से मुक्त हो गए थे।
- फिर भी, उन्हें कई प्रत्यक्षतः सामान्य भौतिक कष्ट सहने पड़े क्योंकि भगवान उनकी भक्ति को तीव्र करना चाहते थे। यह एक क्रमिक प्रक्रिया है.

ŚB 10.88.8
श्रीभगवान उवाच
यस्याहं अनुगृह्णामि
हरिषे तद-धनं शनैः
ततोऽधनं त्यजन्ति अस्य
स्वजना दुःख-दुःखितम्

भगवान ने कहा: यदि मैं विशेष रूप से किसी का पक्ष लेता हूं, तो मैं धीरे-धीरे उसे उसकी संपत्ति से वंचित कर देता हूं। तब ऐसे दरिद्र मनुष्य के परिजन और मित्र उसका त्याग कर देते हैं। इस तरह वह एक के बाद एक कष्ट झेलता है।

इन 4 अनर्थों से मुक्त होने के 5 चरण:

एक अनर्थ (एकदेशवर्तिनी) तक सीमित,

- भक्ति गतिविधियों (भजन क्रिया) का प्रदर्शन शुरू करने के तुरंत बाद, निरस्तीकरण होता है लेकिन यह सीमित है, प्रसिद्ध तर्क के अनुसार: शहर जल गया, कपड़ा फट गया।

- दूसरे शब्दों में, जब हम सुनते हैं कि एक शहर जल गया, तो हम कल्पना कर सकते हैं कि उसमें से कुछ अभी भी विद्यमान होंगे, या यदि कोई कपड़ा फट गया है, तो टुकड़े अभी भी विद्यमान होंगे।
- उपाय: जब कोई अपराध करना बंद कर देता है तो अनरथ स्वतः ही दूर हो जाते हैं।
- नाम अपराधा से सावधानीपूर्वक बचता है - नाम-आभास में स्थित हो जाता है

कई अनर्थों (बहुदेशवर्तिनी) को प्रभावित करने वाला,

निरंतर अभ्यास से निष्ठा के प्रकट होने से उन्मूलन व्यापक (अनेक अनर्थों को प्रभावित करने वाला) हो जाता है।

लगभग पूरा (प्रायिकी),

रति या भाव के प्रकट होने पर उन्मूलन लगभग पूरा हो जाता है।

पूरा (पूर्ण)

प्रेमा के प्रकट होने से उन्मूलन पूर्ण हो जाता है।

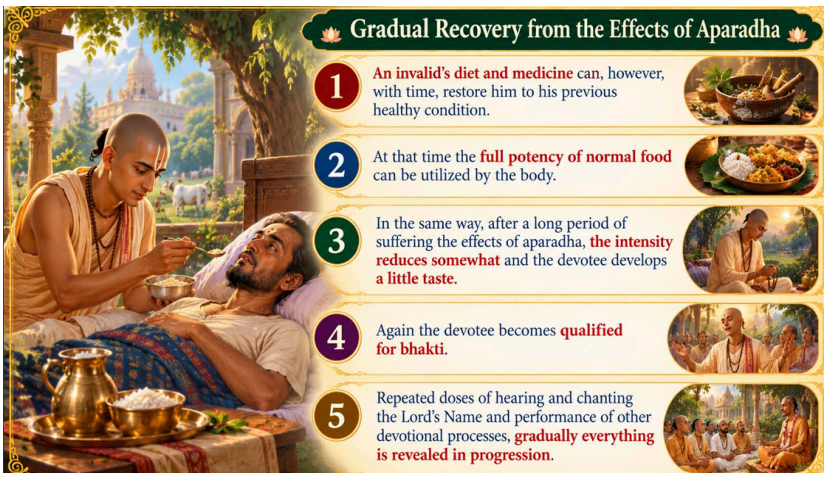
निरपेक्ष (अत्यन्तिकी)

प्रभु के सानिध्य की प्राप्ति के साथ, उन्मूलन पूर्ण है, उनके पुनः प्रकट होने की कोई संभावना नहीं है।

चित्रकेतु के मामले में, जो पहले ही भगवान के चरण कमल प्राप्त कर चुका था, शिव के प्रति उसकी आकस्मिक महाअपराध स्पष्ट थी, वास्तविक नहीं, क्योंकि उसकी गलती का कोई बुरा प्रभाव नहीं था।
भगवान के सहयोगी के रूप में, और एक राक्षस (वृत्रासुर) का रूप धारण करते हुए भी उसकी प्रेम की संपत्ति अभी भी स्पष्ट थी।
जय और विजय के स्पष्ट अपराध का कारण प्रेमा द्वारा प्रेरित उनकी व्यक्तिगत इच्छा की अभिव्यक्ति थी।

यदि कोई यह सोचता है कि नीचे वर्णित ये कभी-कभी घटित होने वाली घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि भगवान के चरणकमलों की प्राप्ति के बाद भी अनर्थ उत्पन्न हो सकते हैं, तो उसे अपनी बुद्धि के द्वारा इस विचार को अपने मन से पूर्णतः निकाल देना चाहिए।





निष्ठा



भजन क्रिया और निष्ठा के बीच अनर्थ निवृत्ति है

- पहले, दो प्रकार की भजन क्रिया, अनिष्ठिता और निष्ठा, की चर्चा में, छह प्रकार की अनिष्ठिता भजन क्रिया का वर्णन किया गया था।
- निष्ठा भजन क्रिया का वर्णन किए बिना अनर्थ निवृत्ति की चर्चा की गई।
- क्योंकि श्रीमद्भागवत में कहा गया है:

शृण्वताम् स्व-कथाः कृष्णः
पुण्य-श्रवण-कीर्तन:
हृद्य अन्तः स्थो ह्य अभद्राणि
विधुनोति सुहृत सततम्

श्री कृष्ण, भगवान के व्यक्तित्व, जो हर किसी के दिल में परमात्मा [परमात्मा] हैं और सच्चे भक्त के दाता हैं, उस भक्त के दिल से भौतिक आनंद की इच्छा को साफ करते हैं जिसने उनके संदेशों को सुनने की इच्छा विकसित की है, जो कि हैं ठीक से सुनने और जपने पर स्वयं पुण्यात्मा बन जाते हैं। (एसबी 1.2.17)

नष्टप्रयेश्व अभद्रेषु
नित्यं भागवत-सेवया
भगवती उत्तम-श्लोके
भक्तिर भवति नैष्ठिकि
भागवत की कक्षाओं में नियमित रूप से उपस्थित होने और शुद्ध भक्त की सेवा करने से, हृदय के लिए कष्टदायक सभी चीजें लगभग पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं, और भगवान के व्यक्तित्व की प्रेमपूर्ण सेवा, जिनकी दिव्य गीतों से स्तुति की जाती है, एक आदर्श के रूप में स्थापित हो जाती है। अपरिवर्तनीय तथ्य. (एसबी 1.2.18)

• निष्ठा का अर्थ है स्थिरता
• निष्ठा, स्थिरता, दो प्रकार की होती है:

सीधे भक्ति के विषय में (साक्षात-भक्तिर-वर्तनी)
भक्ति के अनुकूल तत्वों के संबंध में (भक्ति-अनुकुल वास्तु-वर्तिनी)

• यद्यपि एक व्यक्ति हर दिन स्थिरता के लिए प्रयास करता है, जबकि अनर्थ अभी भी मौजूद हैं, उसे स्थिरता प्राप्त नहीं होगी।

यह इन पांच लगातार बाधाओं के कारण है:

1. लय (नींद)
   - कीर्तन, श्रवण और स्मरण (जप) के दौरान सोने की प्रवृत्ति, बढ़ते क्रम में।

2. विक्षेप (व्याकुलता)
   - सेवा करते समय सांसारिक विषयों की ओर ध्यान भटकाना (अर्थात, जप करते समय गपशप करना)।

3. अप्रतिपत्ति (आध्यात्मिक विषयों के प्रति उदासीनता या अरुचि)
   - लय या विक्षेप की अनुपस्थिति के बावजूद कभी-कभी कीर्तन आदि करने में असमर्थता।

4. कषाय (बुरी आदतों की ओर प्रवृत्ति)
   - पिछली बुरी आदतों के कारण क्रोध, लोभ, अहंकार आदि में लिप्त होने की प्रवृत्ति।

5. रसस्वाद (भौतिक आनंद का स्वाद)
   - भौतिक इन्द्रिय सुख का अवसर मिलने पर मन को कीर्तन में लीन करने में असमर्थता।

इन बाधाओं से बचने के उपाय लिखिए:

लय (नींद)	
विक्षेप (व्याकुलता)	
अप्राप्तिपत्ति (आध्यात्मिक विषयों में अरुचि)	
कषाय (बुरी आदतों की ओर प्रवृत्ति)	
रसस्वाद (भौतिक आनंद का स्वाद)	

निष्ठित भक्ति — इन दोषों के अभाव में प्रकट होती है

तदा रजस्-तमो-भावाः
काम-लोभादयश्च ये ।
चेत एतैरनाविद्धं
स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥

• निष्ठित भक्ति इन दोषों के अभाव में प्रकट होती है।

• उस समय (तदा), तमोगुण और रजोगुण के प्रभावों (रजस्-तमो-भावाः), जैसे काम, लोभ तथा अन्य अशुद्धियों (काम-लोभादयश्च) से पूर्णतः अप्रभावित (नाविद्धं) होकर, हृदय शुद्ध सत्त्व की अवस्था में प्रसन्न और संतुष्ट हो जाता है (सत्त्वे प्रसीदति)।

(SB 1.2.19)

- यहाँ ca शब्द का प्रयोग सामूहिक अर्थ में किया गया है, जो इन सभी अवांछनीय गुणों को सूचित करता है।
- अतः निष्ठा की अवस्था में अज्ञान और रजोगुण के प्रभाव अब प्रमुख रूप से उपस्थित नहीं रहते।
- तथापि एतैरनाविद्धं अर्थात् “इनसे अब प्रभावित न होना” — यह दर्शाता है कि निष्ठा की अवस्था में ये अशुद्धियाँ अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में अभी भी विद्यमान रह सकती हैं, परंतु वे भक्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न नहीं करतीं।
- इन अशुद्धियों के समस्त अंश पूर्णतः तब समाप्त हो जाते हैं, जब साधक भाव की अवस्था को प्राप्त करता है।



1. साक्षात्-भक्ति-वर्तनी

साक्षात्-भक्ति के अनन्त रूप हैं, फिर भी इसके तीन मूल विभाग बताए गए हैं:

शारीरिक (कायिकी), वाचिक (वाचिकी), मानसिक (मानसी)

कुछ आचार्यों के अनुसार, साधक पहले शारीरिक सेवाओं में स्थिरता प्राप्त करता है, उसके बाद वाचिक सेवाओं में, जैसे कीर्तन आदि, और अंततः मानसिक सेवाओं में, जैसे स्मरण और ध्यान।

2. भक्ति-अनुकूल-वस्तु-वर्तिनी

1. भक्ति के अनुकूल तत्वों में विनम्रता, दूसरों को सम्मान देना, मैत्रीभाव और दयालुता सम्मिलित हैं।

2. तथापि, कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि कोई संयमी भक्त इन गुणों में स्थिर होता है, परंतु स्वयं भक्ति में उसकी स्थिरता नहीं होती।

3. वहीं दूसरी ओर, किसी ऐसे अभिमानी भक्त में इन गुणों की स्थिरता स्पष्ट रूप से दिखाई न दे, फिर भी वह भक्ति में स्थिरता प्राप्त कर चुका हो सकता है।

4. इसके बावजूद, विद्वान और विवेकी महापुरुष निष्ठा की वास्तविक उपस्थिति या अनुपस्थिति का निर्णय भक्ति के गुणों के आधार पर नहीं, बल्कि स्वयं भक्ति अर्थात् साक्षात्-भक्ति में स्थिरता की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर करते हैं।

पञ्चम्यमृत-वृष्टिः

अमृत की पाँचवीं वर्षा — रुचि

रुचि — भक्ति के कार्यों में स्वाद

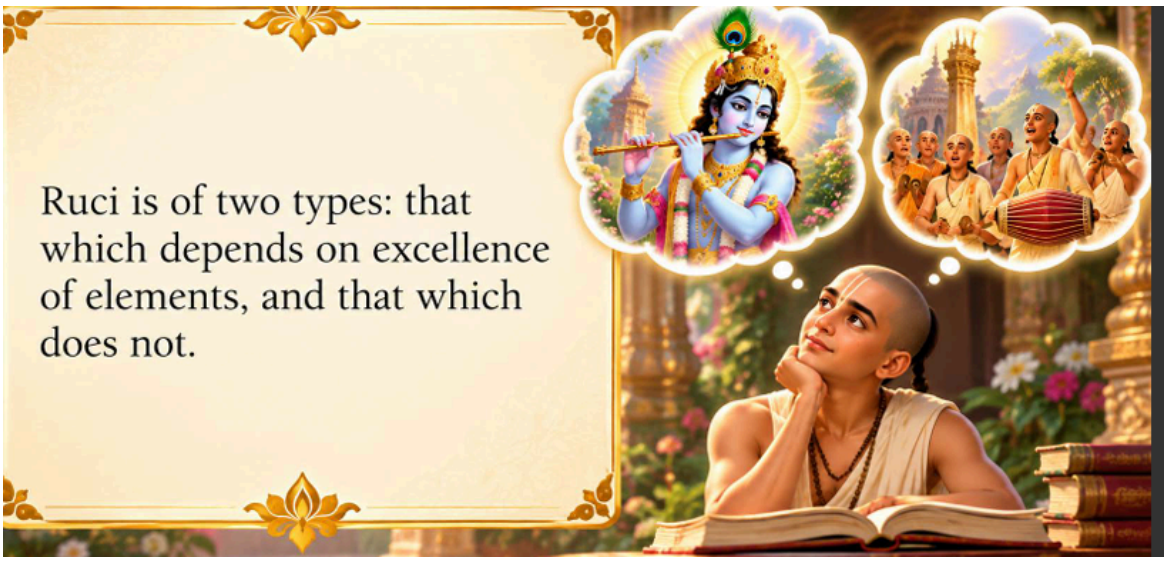
1. जब भक्ति रूपी स्वर्ण-मुद्रा, निरन्तर और स्थिर साधना की अग्नि से अत्यन्त उज्ज्वल होकर तथा अपनी ही शक्ति से प्रेरित होकर भक्त के हृदय में दृढ़तापूर्वक स्थापित हो जाती है, तब भक्ति के कार्यों में रुचि, अर्थात् दिव्य स्वाद, प्रकट होता है।

2. जब किसी व्यक्ति में श्रवण और कीर्तन जैसी भक्ति की क्रियाओं के प्रति ऐसा स्वाद उत्पन्न हो जाता है, जो अन्य किसी भी वस्तु के प्रति आकर्षण से अत्यन्त अधिक होता है, उसे रुचि कहा जाता है।

3. पूर्व की अवस्थाओं के विपरीत, रुचि की अवस्था में निरन्तर श्रवण और कीर्तन करने पर भी तनिक भी थकान अनुभव नहीं होती।



- यह उस ब्राह्मण बालक के समान है, जो प्रतिदिन परिश्रमपूर्वक शास्त्रों का अध्ययन करता है और समय के साथ उनके अर्थ को समझने लगता है। तब अध्ययन में स्वयं को लगाने में उसे कोई कठिनाई नहीं होती, बल्कि धीरे-धीरे उसे अध्ययन में आनंद भी आने लगता है।
- जब यकृत में किसी प्रकार का दोष उत्पन्न हो जाता है, तब स्वाद ग्रहण करने की क्षमता प्रभावित हो जाती है और चीनी भी अरुचिकर लगने लगती है।
- फिर भी वही चीनी उस दोष को दूर करने वाली औषधि भी होती है।
- इस बात को समझकर रोगग्रस्त व्यक्ति प्रतिदिन चीनी का सेवन करता है, भले ही प्रारम्भ में वह उसे अरुचिकर लगे। धीरे-धीरे वही चीनी उसकी बीमारी को ठीक करती है और अंततः उसमें उसके प्रति वास्तविक रुचि उत्पन्न हो जाती है।



प्रकार 1: रुचि जो तत्त्वों की उत्कृष्टता पर निर्भर करती है

तत्त्वों की उत्कृष्टता से अभिप्राय भगवान के नाम, गुण, रूप आदि से संबंधित उत्कृष्टता से है।

उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति कीर्तन से तभी आनंद अनुभव कर सकता है जब वह कानों को मधुर लगे और कलात्मक ढंग से गाया गया हो; अथवा भगवान की कथाओं का रस तभी ले सकता है जब उन्हें साहित्यिक अलंकारों और गुणों के साथ कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया जाए; अथवा विग्रह-सेवा का आनंद तभी ले सकता है जब सभी उपकरण, स्थान और सामग्री उच्च स्तर की हों।

यह उस व्यक्ति के समान है जिसकी भूख मंद हो और जिसे जब भोजन के लिए बुलाया जाए, तो वह पूछे कि कौन-कौन से व्यंजन बने हैं और उनकी गुणवत्ता कैसी है।

प्रकार 2: रुचि जो तत्त्वों की उत्कृष्टता पर निर्भर नहीं करती

दूसरे प्रकार की रुचि वाला व्यक्ति जहाँ कहीं और जब कभी कीर्तन होता है, वहाँ अत्यंत आनंद का अनुभव करता है।

वह तत्त्वों की उत्कृष्टता पर निर्भर नहीं रहता, क्योंकि उसके आस्वादन में वास्तविक गहराई होती है।

यह समझना चाहिए कि उसके हृदय में अशुद्धि का कोई अंश शेष नहीं रहता।

- "हे मित्र! कृष्ण के नामों के अमृत को त्यागकर, तुम सुरक्षा और भोग की उन वस्तुओं को प्राप्त करने के प्रयासों में क्यों लगे हुए हो, जिन्हें प्राप्त करना अत्यंत कठिन है?"
- मैं क्या कहूँ? मैं अत्यंत दुर्भाग्यशाली हूँ, क्योंकि मैं सबसे अधम अपराधी हूँ।
- यद्यपि मुझे आध्यात्मिक गुरु की कृपा प्राप्त हुई है, फिर भी मैंने उसके वास्तविक मूल्य को नहीं समझा। इसके विपरीत, मैं इधर-उधर भटकता रहा और इस प्रकार मैंने अपना जीवन व्यर्थ कर दिया।
- अपने वस्त्र के छोर में एक बहुमूल्य रत्न बाँधकर भी, मैं एक टूटी हुई कौड़ी की खोज करता रहा—भौतिक व्यस्तताओं की नदी के दोनों तटों के बीच स्थित मिथ्या सुख के एक छोटे से स्थान की खोज में।
- भक्ति के किसी भी अंग का अभ्यास न करके, मैंने केवल अपनी उत्साहहीनता को ही प्रकट किया है।

- मैं इतना कपटी हूँ, और मेरी रुचि ऐसी विकृत है कि मैं तीखे एवं सांसारिक विषयों की निन्दात्मक चर्चाओं को अमृत के समान चाटता हूँ, परंतु भगवान के नाम, गुण और लीलाओं को सुनने के प्रति उदासीन रहता हूँ।
- मैं कितना दुर्भाग्यशाली हूँ! जब मैं भगवान के विषय में सुनना आरम्भ करता हूँ, तो बड़े आराम से सो जाता हूँ; और जैसे ही सांसारिक या अशिष्ट चर्चा का कोई अवसर आता है, मेरे कान खड़े हो जाते हैं और मैं पूर्णतः जागृत हो जाता हूँ।
- इस प्रकार मैंने भक्तों की सभा और अन्य सब कुछ दूषित कर दिया है।
- वृद्ध और झुका हुआ होने पर भी, अपने अतृप्त पेट की तुष्टि के लिए ऐसा कौन-सा पापकर्म है जो मैंने नहीं किया?
- मैं नहीं जानता कि अपने इन सभी कर्मों के कारण मुझे किस प्रकार के नरक का दुःख भोगना पड़ेगा।

रुचि के लक्षण

1. तत्पश्चात, किसी एकांत स्थान में, हंस के समान वह श्रद्धा और आदरपूर्वक भगवान की अमृतमयी कथाओं का आस्वादन और वर्णन करने लगेगा—जो कल्पवृक्ष के फल का रस हैं, महान उपनिषद् अर्थात् श्रीमद्भागवतम् हैं, और जिनमें भक्ति का गूढ़ विज्ञान समाहित है।

2. वह निरंतर भक्तों के साथ चर्चा करेगा और कृष्ण के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों को त्याग देगा—एक जिज्ञासु दर्शक के समान जो पहले खड़ा रहता है, फिर बैठता है, और अंततः पूर्ण ध्यान के साथ उसमें प्रवेश कर जाता है।

3. वह भगवान के धाम का आश्रय ग्रहण करेगा और स्वयं को शुद्ध रूप से भगवान की सेवा में स्थिर कर देगा। अज्ञानी लोग समझेंगे कि वह पागल हो रहा है।

4. निपुण भक्तों द्वारा की जाने वाली आनंदमयी भक्ति-सेवा एक नृत्य के समान है।

5. भक्त उस नृत्य की शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ करता है; रुचि रूपी नृत्य-शिक्षिका उसका हाथ पकड़कर उसे सिखाती है, और इस प्रकार वह एक असाधारण, अभूतपूर्व, अकल्पनीय स्वर्णिम आनंद का अनुभव करता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

6. समय आने पर जब भाव और प्रेम रूपी सर्वोच्च नृत्याचार्य उसे नचाएँगे, तब वह किस आनंदमय लोक में स्थित होगा?

अमृत की छठी वर्षा — आसक्ति

इसके पश्चात, जब रुचि अर्थात् वह स्वाद, जिसका आस्वादन-विषय भजन—श्रवण, कीर्तन तथा अन्य भक्तिमय क्रियाएँ—होती हैं, अत्यंत गहन हो जाती है और कृष्ण को ही अपने आस्वादन का विषय बना लेती है, तब उसे आसक्ति अथवा अनुराग कहा जाता है।

आसक्ति

गुणेषु सक्तं बन्धाय
रतं वा पुंसि मुक्तये

1. जिस अवस्था में जीव की चेतना भौतिक प्रकृति के तीन गुणों की ओर आकर्षित होती है, वह बंधनयुक्त जीवन कहलाती है (गुणेषु सक्तं बन्धाय)।

2. परंतु जब वही चेतना भगवान की ओर आसक्त हो जाती है, तब व्यक्ति मुक्ति की चेतना में स्थित हो जाता है (रतं वा पुंसि मुक्तये)।

(SB 3.25.15)

1. आसक्ति की अवस्था में भक्ति-लता पर कलियों के गुच्छे प्रकट होने लगते हैं।

2. शीघ्र ही ये कलियाँ भाव की अवस्था में पुष्प बनेंगी और तत्पश्चात प्रेम की अवस्था में फल बन जाएँगी।

3. यह कथन कि रुचि में भजन आस्वादन का विषय है और आसक्ति में भगवान आस्वादन का विषय हैं, उनके परिमाण की सापेक्षता को सूचित करने वाला एक निर्देश है।

• उसके अपरिचित पड़ोसी यह निष्कर्ष निकालेंगे कि वह जन्म से ही मूर्ख है।

• वैदिक कर्मकाण्ड के अनुयायी उसे मूर्ख समझेंगे।

• निर्गुण ब्रह्म के अनुयायी उसे भ्रमित समझेंगे।

• पुण्यकर्मों के अनुयायी कहेंगे कि वह पतित हो गया है।

• अभक्त कहेंगे कि उसने कोई बहुत बड़ा खजाना प्राप्त कर लिया है।

• और अपराधी कहेंगे कि वह केवल दिखावा कर रहा है।

• इस प्रकार अन्य लोग उसके विषय में निर्णय करेंगे।

• परंतु भक्त मान और अपमान के सभी विचारों से बहुत दूर, भगवान के प्रति आसक्ति (**asakti**) रूपी महान दिव्य नदी की धारा में बहता हुआ, केवल भगवान के और अधिक समीप आने का प्रयास करता रहेगा।

अमृत की सातवीं वर्षा — भाव

I – भाव क्या है?

श्लोक **– 1**

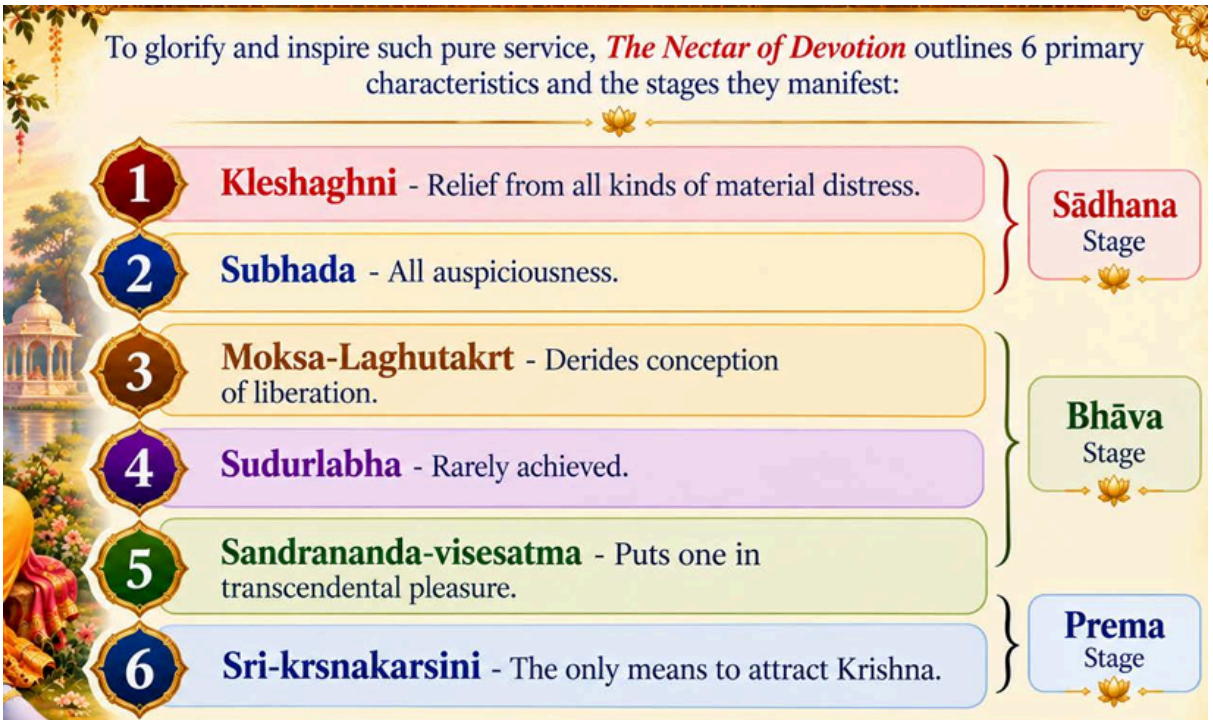
• जब आसक्ति पूर्ण परिपक्वता प्राप्त करती है, तब उसे रति अथवा भाव कहा जाता है।

• भाव भगवान से ही प्रकट होने वाली सत्, चित् और आनंद—इन तीन शक्तियों की अभिव्यक्ति की प्रारम्भिक अवस्था है।

• इसे भक्ति-लता पर खिलने वाला पुष्प कहा जाता है, जिसकी बाहरी शोभा “sarvaiḥ sudurlabhā” अर्थात् “अत्यंत दुर्लभता” का गुण है, और जिसकी आंतरिक शोभा “moksa laghu krti” अर्थात् “मोक्ष को भी तुच्छ समझना” है; जिसका केवल एक कण ही अज्ञान को पूर्णतः उखाड़ देता है।

प्रिय-श्रवस्य अङ्गममाभवद् रतिः

इस प्रकार ध्यानपूर्वक श्रवण करते हुए, भगवान के विषयों को सुनने के प्रति मेरी रुचि प्रत्येक चरण में बढ़ती गई (प्रिय-श्रवस्य अङ्गममाभवद् रतिः).**(SB 1.5.26)**



- इसके अतिरिक्त, अपनी सुगंध की प्रचुरता को चारों ओर फैलाकर भाव रूपी पुष्प मधुसूदन को आमंत्रित करने और उन्हें वहाँ प्रकट करने में समर्थ होता है।
- संक्षेप में, उन सुगंधों से सुवासित होकर हृदय के समस्त भाव, तिल के बीजों के समूह के समान, पिघलकर सुगंधित तेल के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं और तत्काल भगवान के समस्त अंगों पर लेप किए जाने योग्य बन जाते हैं।
- भाव के प्रकट होते ही, उसका आश्रय बना हुआ शरीर—भले ही वह किसी चाण्डाल का शरीर क्यों न हो—भगवान ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं के समान सम्मान के योग्य हो जाता है।
- उस समय उसकी उत्कंठा से भरी आँखें कृष्ण की ओर मुड़ जाती हैं, मानो वे उनके अंगों की श्यामलता, उनके अधरों और नेत्रों के किनारों की अरुणिमा, उनके मुस्कराते मुख में चमकते चन्द्रमा के समान श्वेत दाँतों की उज्ज्वलता तथा उनके वस्त्रों और आभूषणों की पीत आभा का आस्वादन करना चाहती हों; और उसके नेत्र उसके शरीर को असीम अश्रुओं से स्नान कराने लगते हैं।
- किसी शिकार किए जा रहे पशु के समान, वह कभी यहाँ तो कभी वहाँ, समय-समय पर अपनी गति को रोककर अपने कानों को ऊपर उठाता है और कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि, उनके नूपुरों की झंकार, उनकी वाणी के मधुर स्वर तथा उनके विचरण करते चरणों की आहट को सुनने का प्रयास करता है।
- और भगवान के कोमल हाथों के उस बहुप्रतीक्षित स्पर्श का अनुभव करते ही उसका शरीर दिव्य प्रेमानंद से रोमांचित हो उठता है।
- उसके नासाछिद्र बार-बार पूर्णतः खुल जाते हैं और भगवान के शरीर की सुगंध का अनुभव करने की उत्कंठा में उसे भीतर खींचते हैं।
- भगवान के मुखामृत का आस्वादन करने की लालसा में, उस स्वाद को प्राप्त करके उसकी जिह्वा महान आनंद का अनुभव करती है और वह अपने अधरों को चाटने लगता है।
- कभी-कभी, भगवान की स्वेच्छा से जब उसे भगवान का संग प्राप्त होता है, तब उसका हृदय अत्यंत उल्लसित हो उठता है और वह माधुर्य की प्रचुरता में मत्त हो जाता है; और फिर भगवान के चले जाने पर वह शोक करता है तथा अत्यंत विषण्ण हो जाता है।
- इस प्रकार संचारी भाव के लक्षण उसके शरीर को सुशोभित करते हैं।

स्मरण में उसकी तल्लीनता

1. जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन सभी अवस्थाओं में उसकी बुद्धि बिना किसी विचलन के स्वयं को कृष्ण-स्मरण के मार्ग में स्थिर रखने का दृढ़ निश्चय करती है।

2. अपनी नित्य सेवा करने के योग्य आध्यात्मिक शरीर को प्राप्त करने के समय, अविनाशी आत्मा उस शरीर में प्रवेश करती है और भौतिक शरीर लगभग प्राणहीन के समान हो जाता है।

3. इस अवस्था में भक्त कृष्ण के प्रति अत्यंत गहरी ममता का अनुभव करने लगता है; एक भ्रमर के समान वह कृष्ण के चरणकमलों की सुगंध का आस्वादन करने के लिए अत्यंत व्याकुल हो जाता है।

4. भाव रूपी परम बहुमूल्य रत्न को प्राप्त करके भक्त, एक कृपण व्यक्ति के समान, उसे सामान्य लोगों से छिपाकर रखता है।

5. जब वह वैराग्य, सहनशीलता तथा भाव की अवस्था में प्रकट होने वाले अन्य अद्भुत गुणों का आश्रय बन जाता है, तब उन्नत भक्त उन बाह्य लक्षणों के द्वारा उसकी आंतरिक अवस्था को समझ लेते हैं; किंतु अन्य लोग उसके चित्त को बाहरी दृष्टि से विचलित देखकर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वह पागल है।

भाव के दो प्रकार

• भाव की यह अवस्था दो प्रकार की होती है: एक राग-भक्ति से उत्पन्न होने वाली और दूसरी वैधी-भक्ति से उत्पन्न होने वाली।

1. रागानुगा-भक्ति से उत्पन्न भाव

स्वभाव: इसकी शक्ति और स्वाभाविकता अधिक होती है।

भावना: इसमें भगवान के साथ समान स्तर के आत्मीय संबंध की भावना की प्रधानता होती है और भगवान को सर्वशक्तिमान स्वामी के रूप में देखने में अरुचि होती है।

तीव्रता: अत्यंत गाढ़ी अथवा तीव्र।

2. वैधी-भक्ति से उत्पन्न भाव

स्वभाव: इसकी शक्ति और स्वाभाविकता अपेक्षाकृत कुछ कम होती है।

भावना: इसमें भगवान के प्रति ममता के साथ-साथ उन्हें सर्वशक्तिमान भगवान के रूप में देखने का भाव भी मिश्रित रहता है।

तीव्रता: इतनी अधिक गाढ़ी नहीं होती।

• इन दोनों प्रकार के भावों का आस्वादन दो भिन्न प्रकार से उन दो प्रकार के भक्तों के हृदयों में होता है, जिनमें दो प्रकार की आध्यात्मिक अभिलाषाएँ विद्यमान होती हैं।

पाँच रतियाँ

श्लोक **– 4**

• इस भाव का आस्वादन माधुर्य की विभिन्न मात्राओं में होता है, जैसे आम, कटहल, गन्ने अथवा अंगूर के रस के गाढ़ेपन की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। भक्त पाँच प्रकार के होते हैं—शान्त भाव में स्थित भक्त, दास अर्थात् सेवक, सखा अर्थात् मित्र, पितृ अर्थात् ज्येष्ठ या अभिभावक, और प्रेयसी अर्थात् प्रेमिका—जो क्रमशः शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और प्रियता के भावों में सेवा करते हैं।

Five Types of Devotees and Their Moods

Type of Devotee	Relationship (Rati)	Mood (Bhava)
1 Santas	Neutral well-wishers (reverential devotees)	Santa (peaceful mood)
2 Dasas	Servants (attendants)	Dasya (servitude mood)
3 Sakhas	Friends (intimate companions)	Sakhya (friendship mood)
4 Pitrs	Elders (protectors, guardians)	Vatsalya (parental mood)
5 Preyasis	Lovers (most intimate)	Priyata (conjugal mood)

Degrees of Sweetness in Bhava

Analogy	Meaning
Mango	Milder sweetness
Jackfruit	Moderate sweetness
Sugarcane	Greater sweetness
Grape juice	Highest sweetness (most condensed)

परिणाम: इन तत्त्वों से उत्पन्न प्रधान भाव को स्थायी भाव कहा जाता है, जो इन तत्त्वों के साथ मिलकर शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और उज्ज्वल रसों को उत्पन्न करता है।

अमृत की आठवीं वर्षा — प्रेम

भक्ति से भाव और भाव से प्रेम तक

❖ भक्ति रूपी लता में, जिसमें साधना-भक्ति के समय प्रारम्भ में दो पत्तियाँ अंकुरित हुई थीं, अब भाव रूपी पुष्प से जुड़े अनुभावों अर्थात् प्रेमोन्माद के लक्षणों के रूप में अनेक कोमल पंखुड़ियाँ अचानक प्रकट होने लगती हैं।

❖ ये अनुभाव श्रवण, कीर्तन आदि भक्ति की प्रक्रियाओं से पूर्ण होते हैं और प्रत्येक क्षण अत्यंत उज्ज्वल रूप से प्रकाशित होते हैं।

❖ पहले वे भाव नामक पुष्प का निर्माण करते हैं और अंततः प्रेम नामक फल को प्रकट करते हैं।

भक्ति (लता) → भाव (पुष्प) → प्रेम (फल)

प्रेम के लक्षण

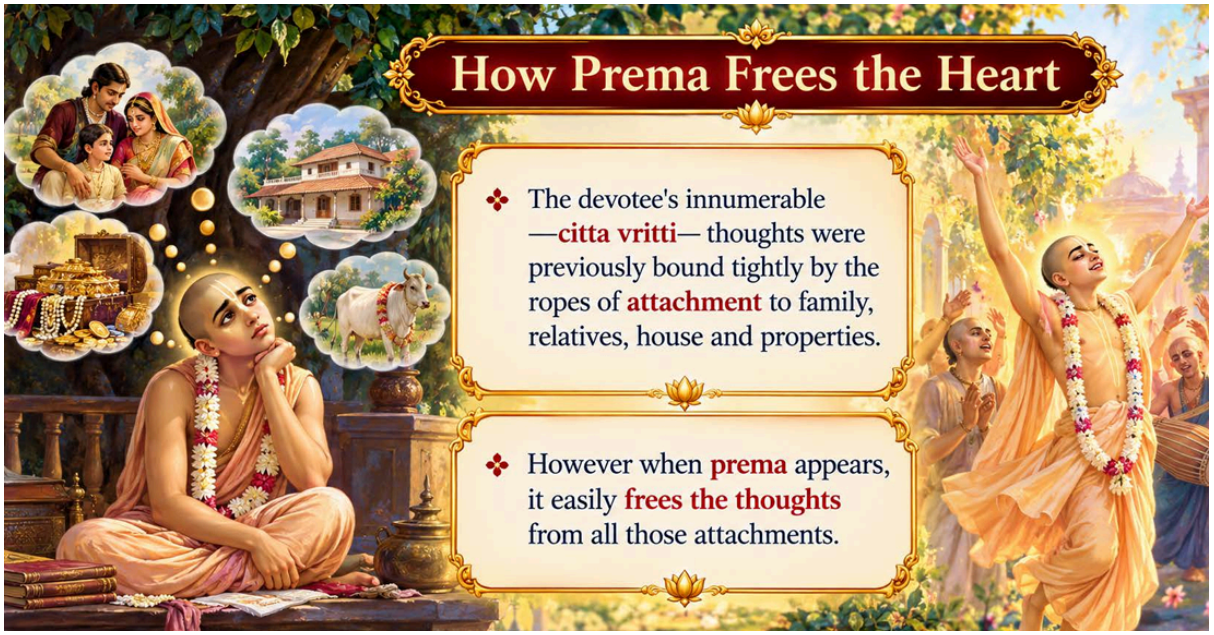
एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या
जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्
उन्माद-वन् नृत्यति लोक-बाह्यः॥

❖ इस प्रकार भक्ति में नियमपूर्वक स्थित होकर (एवं-व्रतः), अपने प्रिय कृष्ण के नाम का कीर्तन करते हुए (स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या), वह प्रेम को प्राप्त करता है (जातानुरागः)।

❖ उसका हृदय द्रवित हो जाता है (द्रुत-चित्त) और वह ऊँचे स्वर में हँसता है (उच्चैः हसति), रोता है, विलाप करता है और गाता है (अथो रोदिति रौति गायति)।

❖ वह लोगों की परवाह किए बिना (लोक-बाह्यः) एक उन्मत्त व्यक्ति के समान नृत्य करता है (उन्माद-वन् नृत्यति)।

(SB 11.2.40)



प्रेम-अमृत की महिमा

1. प्रेम-अमृत का स्वभाव: प्रेम रूपी फल से जो अमृत प्रकट होता है, उसका मूल स्वभाव सघन आनंद (सान्द्रानन्द) है, और उसका विशेष पोषक गुण कृष्ण को आकर्षित करने की शक्ति (कृष्णाकर्षिणी) है।

2. अमृत का आस्वादन: जब भक्त उस अमृत का आस्वादन करना आरम्भ करता है, तब वह किसी भी प्रकार की बाधा की परवाह नहीं करता।

3. पूर्ण तल्लीनता की अवस्था: जैसे धन के लिए अत्यंत व्याकुल कृपण व्यक्ति, अथवा अपने कार्य में इतना तल्लीन चोर कि जिसकी विवेक-बुद्धि समाप्त हो गई हो, उसी प्रकार भक्त अपनी स्वयं की चेतना का भी भान खो देता है।

प्रेमातिभर-निर्भिन्न-
पुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः।
आनन्द-सम्प्लवे लीनो
नापश्यमुभयं मुने॥

अत्यधिक प्रेम (प्रेमातिभर) के कारण मेरे अंग स्पष्ट रोमांच से भर गए (निर्भिन्न-पुलकाङ्गः), मैं अत्यंत आनंद से परिपूर्ण हो गया (अतिनिर्वृतः), आनंद की प्रबल धारा में निमग्न होकर मूर्च्छित हो गया (आनन्द-सम्प्लवे लीनः), और मैं न तो स्वयं को देख सका, न ही भगवान को (नापश्यमुभयं मुने)।

(SB 1.6.17)

प्रेम-अमृत की मधुरता के उदाहरण

1. यात्री को राहत**:** तपती ऋतु में सूर्य की किरणों से झुलसा हुआ, मरुस्थल के मार्ग पर चलने वाला यात्री, घनी शाखाओं से आच्छादित एक विशाल वटवृक्ष की छाया में स्थित शीतल स्थान में पहुँचता है, जहाँ किसी दिव्य सरोवर से लाए गए बर्फ जैसे शीतल जल से भरे सौ पात्र रखे हैं।

2. हाथी को राहत**:** वनाग्नि में फँसा हुआ एक हाथी, जिसके बच निकलने का कोई मार्ग नहीं है, अंततः वर्षा के मेघों से बरसते असीम जल से पूर्णतः स्नान करता है।

3. रोगी को राहत**:** प्राणघातक रोग से पीड़ित तथा तृप्ति के लिए अत्यंत व्याकुल व्यक्ति अमृत पीता है, उसकी अद्भुत मधुरता का आस्वादन करता है और असीम आनंद का अनुभव करता है।

प्रेम-अमृत की मधुरता की तुलना किसी भी भौतिक सुख से नहीं की जा सकती।

भगवान भक्त के समक्ष अपना सौन्दर्य प्रकट करते हैं

1. भगवान का सौन्दर्य **(**सौन्दर्य**):** इस अद्भुत अवस्था में भगवान सर्वप्रथम भक्त के नेत्रों के समक्ष अपना सौन्दर्य प्रकट करते हैं।

2. सभी इन्द्रियाँ तल्लीन हो जाती हैं**:** उस सौन्दर्य की मधुरता के कारण सभी इन्द्रियाँ और मन नेत्रों के समान हो जाते हैं, और स्तम्भ, कम्प तथा अश्रु जैसे लक्षण प्रकट होते हैं।

3. आनंद में मूर्च्छा**:** इसके कारण भक्त आनंद में मूर्च्छित हो जाता है।

भगवान की सुगंध भक्त को सांत्वना देती है

1. भगवान की सुगंध**:** भक्त को सांत्वना देने के लिए भगवान इसके बाद अपनी सुगंध भक्त की नासिका के समक्ष प्रकट करते हैं, और भक्त की सभी इन्द्रियाँ सूँघने के लिए नासिका के समान हो जाती हैं।

2. आनंद में मूर्च्छा**:** भक्त पुनः आनंद में मूर्च्छित हो जाता है।

भगवान की मधुर गंभीर वाणी भक्त को मोहित करती है

1. भगवान की मधुर गंभीर वाणी**:** तत्पश्चात भगवान भक्त के कानों में अपनी मधुर गंभीर वाणी प्रकट करते हैं: **"**हे मेरे भक्त**!** मैं तुम्हारे वश में हूँ।**"**

2. अपनी इच्छा को पूर्ण रूप से तृप्त करो**:** "विह्वल मत हो, बल्कि मेरा आस्वादन करते हुए अपनी इच्छा को पूर्ण रूप से तृप्त करो।"

3. सभी इन्द्रियाँ कानों के समान हो जाती हैं**:** सुनने के लिए सभी इन्द्रियाँ कानों के समान हो जाती हैं और तीसरी बार भक्त मूर्च्छित हो जाता है।

भगवान भक्त के समक्ष अपना नवीन यौवन प्रकट करते हैं

1. भगवान का नवीन यौवन **(**सौकुमार्य**):** मूर्च्छा के आरम्भ में भगवान कृपापूर्वक अपने चरणकमलों, अपने हाथों और अपने वक्षस्थल का स्पर्श भक्त को प्रदान करते हैं और उसके समक्ष अपना नवीन यौवन (सौकुमार्य) प्रकट करते हैं।

2. कृपामय स्पर्श**:** भगवान अपने चरणकमलों, अपने हाथों और अपने वक्षस्थल का स्पर्श भक्त को प्रदान करते हैं।

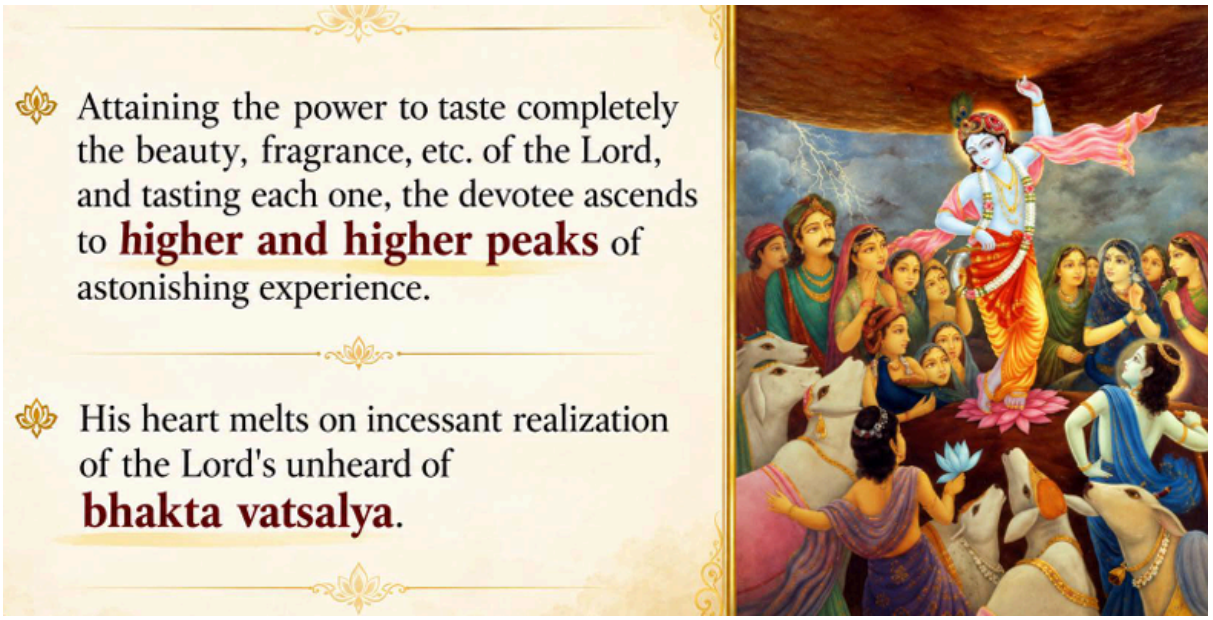
3. अपना नवीन यौवन प्रकट करते हैं**:** इस कृपामय स्पर्श के द्वारा भगवान भक्त के समक्ष अपना नवीन यौवन (सौकुमार्य) प्रकट करते हैं।

भगवान की समस्त मधुरता के लिए भक्त की उत्कंठा

1. समस्त मधुरता के लिए उत्कंठा**:** यदि भक्त सौन्दर्य आदि सभी प्रकार की मधुरताओं का एक ही समय में आस्वादन करना चाहे, तो वह उस चातक पक्षी के समान है जो अपनी चोंच से वर्षा की सभी बूँदों को एक साथ पीना चाहता है, जो संभव नहीं है।

2. सबका एक साथ अनुभव**:** भक्त भगवान के सौन्दर्य, सुगंध, ध्वनि, स्पर्श, स्वाद और औदार्य की समस्त मधुरताओं का एक ही समय में अनुभव करने का प्रयास करता है, जैसे चातक पक्षी अपनी चोंच में वर्षा की सभी बूँदों को एक साथ ग्रहण करने का प्रयास करता है।

3. भगवान का करुणामय विचार**:** तब भगवान यह देखकर कि उनके भक्त के भीतर इन सबके लिए एक साथ स्थान नहीं है, विचार करते हैं, **"**मैं अपने भीतर इतने सारे अद्भुत गुणों को क्यों धारण किए हुए हूँ**?"**



❖ अपने अद्‌भुत स्वभाव को प्रकट करते हुए भगवान कहते हैं, “हे भक्तश्रेष्ठ! अनेक जन्मों से तुमने मेरी सेवा के लिए पत्नी, घर और धन का त्याग किया है।”

❖ तुमने शीत, वायु, भूख, प्यास और पीड़ा के कष्टों को सहन किया, अन्य लोगों के तिरस्कार को सहते हुए भिक्षा द्‌वारा जीवन-यापन स्वीकार किया।

❖ तुम्हारे इन समस्त त्यागों के बदले में मैं तुम्हें कुछ भी देने में समर्थ नहीं हूँ। मैं तुम्हारा ऋणी हो गया हूँ।

❖ जब संपूर्ण पृथ्वी पर आधिपत्य, देवता का पद तथा योग-सिद्‌धियाँ तुम्हारे लिए उपयुक्त ही नहीं हैं, तो फिर मैं तुम्हें वे कैसे दे सकता हूँ?

❖ तुम्हारे जैसे आध्यात्मिक व्यक्तित्व को गायों के भोग की वस्तु, घास और तिनके, कैसे दिए जा सकते हैं?

❖ यद्‌यपि मैं अजेय हूँ, फिर भी आज तुमने मुझे जीत लिया है। अब मैं तुम्हारी कोमलता-रूपी लता की शरण ग्रहण कर रहा हूँ।

❖ भगवान के इन मधुर और स्नेहपूर्ण वचनों को अपने कानों के आभूषण के समान स्वीकार करते हुए भक्त कहता है, “हे मेरे प्रभु! हे मेरे स्वामी! हे अथाह कृपा के सागर!”

❖ जब मैं इस भौतिक अस्तित्व के भयावह प्रवाह में अनंत जन्म-मृत्यु के असंख्य दुःखों रूपी मगरमच्छों द्‌वारा काटा जा रहा था, तब आपने मुझ पर अपनी कृपादृष्टि डाली।

❖ हे समस्त भौतिक लोकों से परे स्थित प्रभु! आपका मक्खन के समान कोमल हृदय करुणा से भरकर पिघल जाता है।

❖ आध्यात्मिक गुरु के रूप में आप अज्ञान और कामना का विनाश करते हैं!

❖ अपने अद्‌भुत स्वरूप के सुदर्शन चक्र को प्रकट करके आपने उन मगरमच्छों को विदीर्ण कर दिया और मुझे उनके दाँतों की पकड़ से मुक्त कर दिया।

❖ आपके चरणकमलों की दासी के रूप में सेवा करने की मेरी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए आपने अपने मंत्र के अक्षरों को मेरे कानों में स्थापित किया।

❖ आपने मेरे दुःखों का नाश किया और अपने गुणों तथा नाम का निरंतर श्रवण, कीर्तन और स्मरण कराने की प्रक्रिया द्‌वारा मुझे शुद्‌ध किया।

❖ अपने भक्तों की संगति द्‌वारा आपने मुझे यह समझाया कि आपकी सेवा किस प्रकार की जाती है।

❖ मैं बुद्‌धिहीन हूँ, अधम से भी अधम हूँ, और मैंने एक दिन भी आपकी सेवा नहीं की है। ऐसा कृपण और स्वार्थी व्यक्ति तो दण्ड पाने के योग्य है।

❖ परंतु इसके विपरीत, आपने स्वयं मुझे अपना दर्शन देकर अमृत का पान कराया है।

❖ आपने यह कहकर मुझे अत्यंत संकोच में डाल दिया है कि आप मेरे ऋणी हो गए हैं। अब मैं सोच रहा हूँ कि मैं क्या करूँ।

❖ क्या यह मेरी धृष्टता होगी यदि मैं आपसे अपने पाँच, सात, आठ, एक हजार अथवा दस लाख अपराधों को क्षमा करने की प्रार्थना करूँ? मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि मेरे अपराधों की संख्या एक खरब से भी अधिक होगी।

❖ मेरे पूर्व कर्मों की समस्त प्रतिक्रियाएँ—जो अत्यंत तीव्र और दीर्घकाल से चली आ रही हैं, जिन्हें मैं भोग चुका हूँ तथा जिन्हें भविष्य में भोगना शेष है—वे सब बनी रहें।

❖ पहले मैंने आपके श्याम अंगों की तुलना वर्षाकालीन मेघ, नीलकमल और नीलमणि से की थी; आपके दीप्तिमान मुख की तुलना चंद्रमा से और आपके कोमल चरणों की तुलना नवांकुरित पत्तियों से की थी।

❖ अब ये सभी उपमाएँ मुझे स्वर्ण-पर्वत की तुलना में जली हुई सरसों के दानों के ढेर के समान, चिंतामणि की तुलना में चने के समान, सिंह की तुलना में सियार के समान और गरुड़ की तुलना में मच्छर के समान प्रतीत होती हैं।

❖ तत्पश्चात भगवान भक्त के साथ उसके विशिष्ट संबंध के लिए आवश्यक, श्रेष्ठ रस से परिपूर्ण समस्त अनुकूल वस्तुओं और व्यवस्थाओं को प्रकट करते हैं—श्री वृन्दावन, कल्पवृक्ष, महायोगपीठ, वृषभानु महाराज की परम प्रिय पुत्री, उनकी सखियाँ जैसे ललिता तथा उनकी मञ्जरियाँ, भगवान के अपने सखा जैसे सुबाल, उनके द्वारा पाली जाने वाली गायें, यमुना नदी, गोवर्धन, भाण्डीरवन जैसे वन, नन्दीश्वर पर्वत, वहाँ के समस्त माता-पिता, भाई, मित्र, सेवक तथा अन्य सभी व्रजवासी।

❖ भगवान भक्त को आनंद की मनोहर ज्वार-तरंगों में पूर्णतः डुबो देते हैं और फिर अपने समस्त पार्षदों सहित अंतर्धान हो जाते हैं।

❖ कुछ क्षणों के पश्चात चेतना लौटने पर, भगवान को पुनः देखने के लिए अत्यंत व्याकुल भक्त अपनी आँखें खोलता है और भगवान को न देखकर रोने लगता है।

❖ "क्या मैं केवल स्वप्न देख रहा था? नहीं, नहीं, मैं स्वप्न नहीं देख रहा था, क्योंकि न तो मुझे तंद्रा थी और न ही निद्रा के कारण मेरी आँखों में कोई मलिनता थी।"

❖ क्या यह कोई भ्रम था? नहीं, क्योंकि कोई भ्रम वास्तविक आनंद प्रदान नहीं कर सकता।

❖ अथवा क्या यह मन के किसी दोष के कारण हुआ था? नहीं, क्योंकि चंचल अथवा अस्थिर मन के सभी लक्षण यहाँ अनुपस्थित हैं।

❖ क्या यह किसी भौतिक इच्छा की पूर्ति थी? नहीं, कोई भी भौतिक कल्पना उस अनुभव के निकट भी नहीं पहुँच सकती जो मैंने देखा है।

❖ क्या यह भगवान के साथ केवल क्षणिक मिलन था? नहीं, क्योंकि यह भगवान के उन सभी पूर्व दर्शनों से पूर्णतः भिन्न है जिन्हें मैं स्मरण कर सकता हूँ।

1. धूलि से भरी भूमि पर पड़े हुए वह उसी अनुभव को पुनः प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रार्थना करता रहता है।
2. उसे पुनः प्राप्त न कर पाने पर वह विलाप करता है, रोता है, भूमि पर लोटता है, अपने ही शरीर को घायल कर लेता है, मूर्च्छित हो जाता है, पुनः चेतना प्राप्त करता है, खड़ा होता है, बैठता है, इधर-उधर दौड़ता है और उन्मत्त व्यक्ति के समान करुण क्रंदन करता है।
3. कभी वह मुनि के समान मौन रहता है और कभी समाज से सर्वथा असंबद्ध व्यक्ति के समान अपने नित्य अनिवार्य कर्तव्यों को भी पूरा नहीं कर पाता।
4. मानो किसी प्रेत से आविष्ट व्यक्ति की भाँति वह असंबद्ध और असंगत बातें करने लगता है।



अष्टम अमृत-वृष्टि- श्री चैतन्य महाप्रभु की सर्वत्र जय हो

श्लोक **– 14**

माधुर्य-वारिधेः कृष्ण-
चैतन्याद् उद्धृतैः रसैः
इयं धिनोतु माधुर्य
मयी कदम्बिनी जगत् ॥

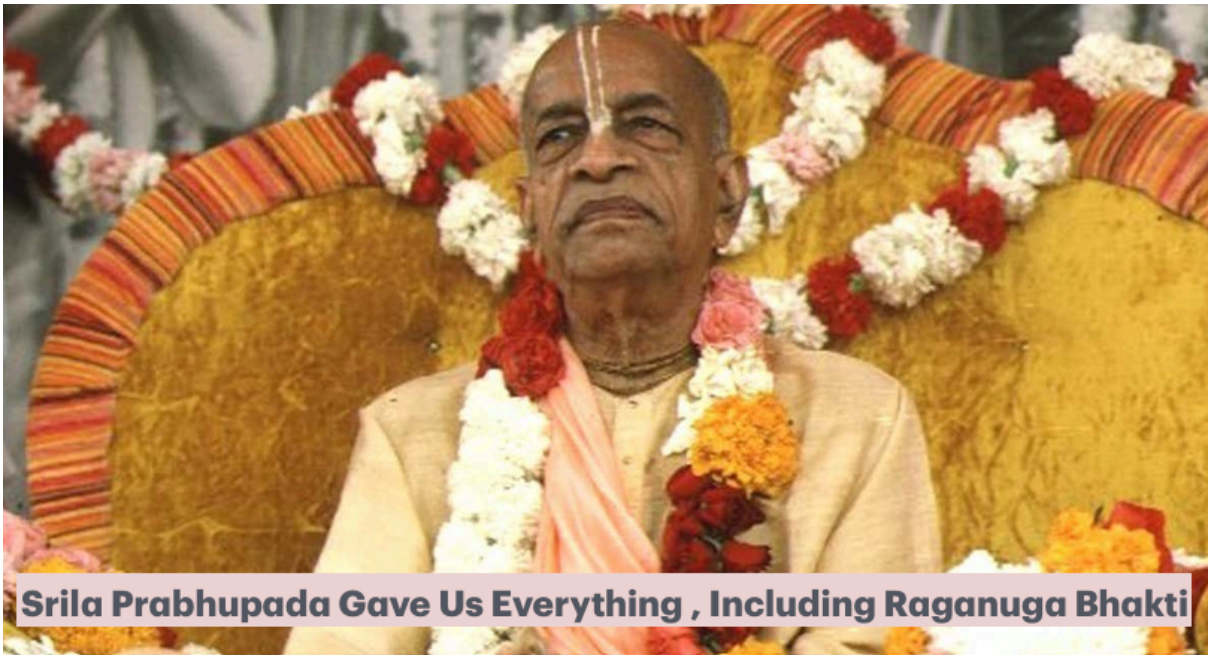
यह मेघ-माला माधुर्य के साक्षात् महासागर, श्री चैतन्य महाप्रभु (कृष्ण-चैतन्याद् माधुर्य-वारिधेः) से रस को ग्रहण करके लाई है (उद्धृतैः रसैः)। यह माधुर्य से परिपूर्ण मेघ-माला (इयं माधुर्य मयी कदम्बिनी) उस रस का वितरण करके इस प्यासे संसार को तृप्त करे (जगत् धिनोतु)।

एबे नाम संकीर्तन तीक्ष्ण खड्ग लञा
अन्तर असुर जीवेर फेलिब काटिया

“हरिनाम-संकीर्तन रूपी तीक्ष्ण तलवार को धारण करके मैं बद्धजीवों के हृदय में स्थित आसुरी प्रवृत्ति को जड़ से काटकर नष्ट कर दूँगा।”

यदि पापी छाड़ि धर्म दूर देशे याय
मोर सेनापति-भक्त याइबे तथाय

“यदि कुछ पापी लोग धार्मिक सिद्धांतों को त्यागकर दूर देशों में भाग जाएँगे, तो मेरा सेनापति भक्त वहाँ प्रकट होकर उनका पीछा करेगा और कृष्णभावनामृत का वितरण करेगा।”



आशा की प्रार्थनाएँ

CC Madhya 17.80

मूकं करोति वाचालं
पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्
यत्-कृपा तमहं वन्दे
परमानन्द-माधवम्

“परम पुरुषोत्तम भगवान का स्वरूप सच्चिदानन्द-विग्रह है—वे दिव्य आनंद, ज्ञान और शाश्वत अस्तित्व से परिपूर्ण हैं। मैं उन परम आनंदमय माधव को सादर प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपा से मूक व्यक्ति भी प्रभावशाली वक्ता बन जाता है और लँगड़ा व्यक्ति भी पर्वत को पार कर सकता है। भगवान की कृपा ऐसी ही अद्भुत है।”

CC Antya 1.2

दुर्गमे पथि मेऽन्धस्य
स्खलत्-पाद-गतेर्मुहुः
स्व-कृपा-यष्टि-दानेन
सन्तः सन्त्ववलम्बनम्

“मेरा मार्ग अत्यंत दुर्गम है। मैं अंधा हूँ और मेरे चरण बार-बार फिसल रहे हैं। अतः संतजन अपनी कृपा रूपी छड़ी प्रदान करके मुझे सहारा दें और मेरे आश्रय बनें।”